वार्षिक रु. ६० मूल्य रु. ८.००
विवेक-ज्योति
वर्ष ५२ अंक ११ नवम्बर २०१४
रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर (छ.ग.)

मंगल कामना

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखःभाग्भवेत् ।।
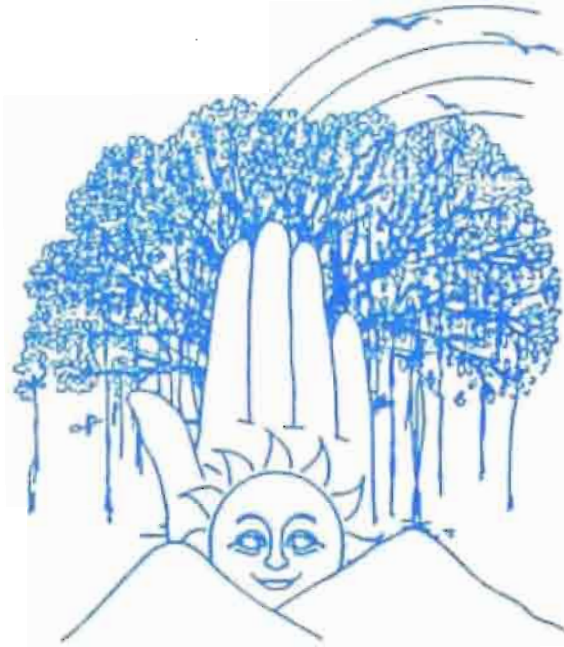
सब सुखी हों।

सब रोगरहित हों।

सब कल्याण का साक्षात्कार करें।

दुःख का अंश किसी को भी प्राप्त न हो।

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

नवम्बर २०१४

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५२
अंक ११

वार्षिक ६०/– **एक प्रति ८/–**

५ वर्षों के लिये – रु. २७५/–
आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,२००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक ९०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ४००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखकवृन्द ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक-ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। 'विवेक-ज्योति' हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है। २.रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं। ३. लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें। ४. आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें। ५. पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें। ६.'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। ७.'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

सम्पादक महोदय से मुझे भी कुछ कहना है

आदरणीय महोदय,... आपके यहाँ विवेकानन्द जयन्ती समारोह प्रतिवर्ष मनाया जाता है, किन्तु इसकी जानकारी हमलोगों को नहीं हो पाती है। पूर्व में 'विवेक-ज्योति' में कार्यक्रम प्रकाशित होता था, जिससे जानकारी मिल जाती थी। आजकल 'विवेक-ज्योति' में कार्यक्रम प्रकाशित नहीं हाते। अतएव नम्र निवेदन है कि कार्यक्रम होने के पूर्व विवेक-ज्योति में प्रकाशित करने की कृपा करें, जिससे दूरस्थ ग्रामों के ग्राहकों को कार्यक्रम का लाभ मिल सके।

– बलदाऊ प्रसाद मिश्रा, दुर्ग

सम्पादक जी, **...** विवेक ज्योति पत्रिका मुझे समय पर मिल रही है । इसके लेख बहुत अच्छे और सारगर्भित हैं। मैंने आपको शायद लिखा भी है। पत्रिका समयानुकूल परिवर्तन चाहती है। इस पत्रिका को और आकर्षक और नये कलेवर की आवश्यकता है, ताकि युवावर्ग को इसमें रुचि आ सके। बाद में विशेषांक अवश्य निकालें, आप पत्रिका का शुल्क बढ़ायें। **– विजय कुमार कपूर, अलीगढ़**

परम आदरणीय सम्पादक जी, ...'विवेक-ज्योति में युवकों को जीवन-निर्माण कार्यक्रम में जोड़ने के लिये प्रेरक कथा एवं घटनायें शामिल किया जाय, तो स्वामी विवेकानन्द जी का मूल उद्देश्य मनुष्य-निर्माण कार्य हेतु प्रेरणा पाकर युवक जुड़ेंगे एवं इस कार्य हेतु सहायता मिलेगी। अत: श्रद्धेय सम्पादक जी से अनुरोध है कि प्रेरक कथा एवं घटनाओं को प्राथमिकता देते हुये प्रकाशित करने की कृपा करें। – **श्याम कुमार पाढ़ी, चाम्पा (छ.ग.)**

परम आदरणीय वन्दनीय महोदय, ... इसमें सभी लेख ऐतिहासिक हैं। वर्तमान के आधार पर कुछ ताजा लेख शामिल करें और पृष्ठ संख्या भी बढ़ायें। ...कुछ लेख स्वास्थ्य सम्बन्धी भी शामिल करें, जो विशेषज्ञों द्वारा लिखे गये हों। बारी-बारी से पृथक से सम्बन्धित लेख प्रस्तुत करें। – **प्रेमचन्द कतना, हमीर, (हि.प्र.)**

'विवेक-ज्योति' के हितैषी सम्माननीय पाठको ! आप लोगों की सुविधाओं का ध्यान रखते हुये आपके परामर्शानुसार ही कुछ निर्णय हमने लिये हैं और 'विवेक-ज्योति' में सुधार जारी है, जिसका अनुभव आप स्वयं कर रहे होंगे। भविष्य में इसमें बहुत से सुधारों की सम्भावनायें हैं और इसे करने के लिये हम दृढ़ संकल्प हैं। आवश्यकता है, सदा आपके शुभेच्छाओं और सहयोग की। – सम्पादक

विवेक-ज्योति के आजीवन सदस्यों की सूची

१४०१. श्री दीवान राम आर्य, श्यामलाताल,चम्पावत (उ.ख.)
१४०२. श्रीमती आरती जितेन्द्र राजपाली, नागपुर (महा.)
१४०३. श्री एम. एल. धींगा, जवाहर कॉलोनी, फरीदाबाद (हरि.)
१४०४. श्री ज्योति प्रकाश व्यास, नवचौकिया, जोधपुर (राज.)
१४०५. श्री बद्रीश्वर प्रसाद पालीवाल, सौभागपुरा, उदयपुर (राज.)
१४०६. श्री सिद्धान्त साबु, १०१, कैफे परेड, मुम्बई (महाराष्ट्र)
१४०७. श्री अरविन्द विक्रम सिंह, कानपुर रोड, लखनऊ (उ.प्र.)
१४०८. श्री रमेश कुमार सिंघानिया, टाटीबंध, रायपुर (छ.ग.)
१४०९. डॉ. हेमन्त विनायकराव जाम्बेकर, नागपुर (महा.)
१४१०. रामकृष्ण विवेकानन्द सेवा समिति, अहमदनगर (महा.)
१४११. प्राचार्य, माँ सारदा पब्लिक स्कूल, से.-९, भिलाई (छ.ग.)
१४१२. डॉ. पंकज कुमार लखटकिया, डॉक्टर्स कॉलोनी,रीवा (म.प्र.)
१४१३. श्री गिरीश चन्द्र वाजपेयी, रवि नगर, रायपुर (छ.ग.)
१४१४. डॉ. कृष्ण लाल गोंदवाल, यमुना नगर (हरियाणा)
१४१५. कोलोम्बिया कॉलेज ऑफ फार्मेसी, रायपुर (छ.ग.)
१४१६. सूबेदार. आर.बी. ठाकुर, चंडीपुर, बालासुर (उड़ीसा)
१४१७. श्रीश्री काली मन्दिर, खारुवाँ, वाया-रासरा, बलिया (उ.प्र.)
१४१८. श्री ओमप्रकाश सारस्वत, भदवासिया, जोधपुर (राज.)
१४१९. श्री एस. के. पाण्डेय, साकेत नगर, कानपुर (उ.प्र.)
१४२०. श्रीमती ऋचा रातुरी, बल्लुपुर, देहरादून (उतराखण्ड)
१४२१. श्री कंचन वसन्त दाबके, भारत नगर, नागपुर (महा.)
१४२२. एस.ई.सी.एल. हेडक्वाटर (सिस्टम) बिलासपुर (छ.ग.)
१४२३. श्री दिनेश सुन्द्रियाल, वीरभद्र ऋषिकेश, देहरादून (उ.ख.)
१४२४. श्री प्रेमराम हनेरी, श्यामलाताल, जि.-चम्पावत (उ.ख.)
१४२५. श्री भास्कर जोशी, बामन जोल, जि.-चम्पावत (उ.ख.)
१४२६. श्रीमती सौम्या टोकदार, नेहरू नगर, भिलाई (छ.ग.)
१४२७. श्री सुबोध साहेब, बाघमर्रा, जिला - राजनांदगाँव (छ.ग.)
१४२८. स्वामी तारानन्द, भारत सेवाश्रम संघ, कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)
१४२९. सतनाम साक्षी ट्रेडर्स, भाटापारा, बलोदाबाजार (छ.ग.)
१४३०. श्री अरुण प्रमानिक, होटल मानसिंग, जयपुर (राज.)
१४३१. श्री मिलनभाई एम. राजगुरु, चार रास्ता, आनन्द (गुज.)
१४३२. स्वामी अनाद्यानन्द, रामकृष्ण सेवा आश्रम, कनखल
१४३३. पूनम भारती, आजाद नगर, साहिबगंज (झारखंड)
१४३४. श्री मेघराज कौशिक, ४६/२, रोहणीपुरम, रायपुर (छ.ग.)
१४३५. श्रीमती ममता सुभाष हेडा, सुखसागर, अमरावती (महा.)
१४३६. स्वामी प्रियव्रतानन्द, रामकृष्ण आश्रम, ग्वालियर (म.प्र.)
१४३७. डॉ. सलीम अहमद मुन्ना, मोरर, ग्वालियर (म.प्र.)
१४३८. श्री महेन्द्र प्रसाद कुमार, औंध एनेक्स, पुणे (महा.)
१४३९. श्री बी.के. मण्डल, वृन्दावन कॉलोनी, जगदलपुर (छ.ग.)
१४४०. डॉ. पी. एन. पाण्डेय, चिरन्तनीपारा, हावड़ा (प.बं.)
१४४१. रामकृष्ण सत्संग मण्डल, कुम्हारटोली, गोन्दिया (महा.)
१४४२. श्री सुनील कुमार बिस्वास, ब्रह्मपुरी, चन्द्रपुर (महा.)
१४४३. श्री प्रसन्ना निमोनकर, चौबे कॉलोनी, रायपुर (छ.ग.)
१४४४. श्री सुरेश ठाकुर, रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ, हावड़ा
१४४५. श्री राधेश्याम मैत्री, भौथली-हरदी, जि. रायगढ़ (छ.ग.)
१४४६. श्री मुकेश लुथरा, सिविल लाईन्स, बालाघाट (म.प्र.)
१४४७. डॉ. दिनेश वशिष्ठ, शान्ति नगर, एटा (उ.प्र.)
१४४८. वैध पं. विनोद कुमार शुक्ला, वृन्दावन, मथुरा (उ.प्र.)
१४४९. श्री रमन पुरोहित, देवघर-मढ़रिया, जि.-राजसमंद (राज.)
१४५०. श्री कौशल किशोर राजौरिया, दमोह रोड, जबलपुर
१४५१. सचिव, विवेकानन्द विद्यापीठ, पिपलानी, भोपाल
१४५२. श्री ओ.पी. वर्मा, पो. - दुबरी, जिला - मऊ (उ.प्र.)
१४५३. डॉ. सुभाष बाबू शर्मा, गोमती नगर, लखनऊ (उ.प्र.)
१४५४. श्री रामकिशोर समारिया, मालवीय नगर, जयपुर (राज.)
१४५५. श्री आकाश मनोज साधवानी, चांपा, जांजगीर-चांपा
१४५६. श्री मनीष मोहन सिन्हा, राष्ट्रीय राइफल्स, ५६ एपीओ
१४५७. विवेकानन्द लाईब्रेरी, रा.कृ.वि.आश्रम,सहारनपुर (उ.प्र.)
१४५८. अभिलाष स्मृति सार्वजनिक वाचनालय, अमरावती (महा.)
१४५९. श्री संतोष कुमार व्यास, जूनी मंडी, जोधपुर (राज.)
१४६०. डॉ. कमलाकुमारी उपाध्याय, अस्सी, वाराणसी (उ.प्र.)
१४६१. श्री राजेश कुमार टुकालिया, चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)
१४६२. श्री मिलिन्द विठोबाजी तल्मले, सिंधी, वर्धा (महा.)
१४६३. श्री भूषण अरूण चौधरी, संभाजी चौक, पुणे (महा.)
१४६४. श्री अखिल सिंह बघेल, खैरागढ़, जि.राजनांदगाँव (छ.ग.)
१४६५. श्री आदित्य कुमार साहू, ग्रा.-मेघा, जि.धमतरी (छ.ग.)
१४६६. श्री रविन्द्रनाथ वर्मा, लाल टोला,पूर्व चम्पावत (बिहार)
१४६७. श्री अशोक कुमार अग्रवाल, लेक टाउन, कोलकाता
१४६८. श्री हीरानन्द पाण्डे, बालिका कॉलेज, भदोही (उ.प्र.)
१४६९. श्री पंकज कुलश्रेष्ठ, आर.के. पुरी., ग्वालियर (म.प्र.)
१४७०. श्री सुरेश कु. उपाध्याय, काजरवारा, जबलपुर (म.प्र.)
१४७१. श्री अरविंद कुमार जयसवाल चौरी-चौरा, गोरखपुर (उ.प्र.)
१४७२. श्री जीवन कुमार, विद्यापीठ रोड, वाराणसी (उ.प्र.)
१४७३. श्री सारदा कुटीर, डी-५३-१८, लक्सा, वाराणसी (उ.प्र.)
१४७४. श्री अशोक कुमार पटेल, देवरी-बरमान, नरसिंहपुर (म.प्र.)
१४७५. सुश्री हीरा महवार, हाउसिंगबोर्ड. मउ मार्ग, अलवर (राज.)
१४७६. श्री दुर्गेश शर्मा, ५/२२, महेश नगर, इन्दौर, (म.प्र.)
१४७७. श्री अनन्या दुबे, लंकी नगर एक्स., इन्दौर (म.प्र.)
१४७८. श्रीमती प्रीति सिंह, गोरेगाँव टाउन, इलाहबाद (उ.प्र.)
१४७९. डॉ. शोभित बॅनर्जी, वेयर हाउस रोड, बिलासपुर (छ.ग.)
१४८०. डॉ. एल.पी. पाटेरिया,सोनगंगा कॉलोनी, बिलासपुर (छ.ग.)

विज्ञापन

वेदों में मानवीय सद्भावना की ऋचायें

समानो मन्त्रः समिति समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ।।

हमारे विचारों में समानता हो, हमारे चिन्तन से सबका मंगल हो, हमारी भावनायें सबके लिये समान रूप से लोक-मंगलकारी हों, हम समान रूप से सद्भावना पूर्वक रचनात्मक कार्यों में अग्रसर होकर समस्त ब्रह्माण्ड का, सम्पूर्ण संसार का संरक्षण करें, सबकी सेवा करें, सबको प्रेम प्रदान करें और इस विश्व को शक्तिशाली बनायें। हमारे मन, कर्म और वाणी में एकता हो। जगत-मंगलकारी कार्यों में हमारे विचार एक हों। सबकी समृद्धि हेतु हमारी क्रियाओं में हितकर ऐक्य भाव हो। हमारी दृष्टि, हमारा व्यवहार, पृथ्वी के समस्त प्राणियों का एक समान निष्पक्ष रूप से मंगल करे। हममें परस्पर स्नेह एवं सद्भावना हो। हम सबमें परस्पर स्नेहपूर्वक सामंजस्यता हो। हम एक-दूसरे का सदा कल्याण एव मंगलभावना का विकास करें।

पुरखों की थाती

पदे पदे च रत्नानि, योजने रसकूपिका ।
भाग्यहीना न पश्यन्ति, बहुरत्ना वसुन्धरा ।।४२२।।

– धरती में कदम-कदम पर रत्न छिपे हैं, हर योजन (८-१० मील) पर मूल्यवान धातु दबी पड़ी हैं। यह सारी वसुन्धरा रत्नों से परिपूर्ण है, परन्तु भाग्यहीन लोग उन्हें देख नहीं पाते।

पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते ।
अस्तब्धत्वमचापल्यं प्रत्यक्षेणावगम्यते ।।४२३।।

– निपुणता और सच्चाई, ये दोनों तो बातचीत से प्रकट हो जाती हैं, परन्तु गम्भीरता तथा चांचल्यहीनता तो प्रत्यक्ष रूप से ही जाने जाते हैं।

पठतो नास्ति मूर्खत्वं जपतो नास्ति पातकम् ।
मौनिनः कलहो नास्ति न भयं चास्ति जाग्रतः ।।४२३।।

– निरन्तर पढ़ते रहनेवाले में अज्ञान नहीं रह जाता, निरन्तर जप करते रहनेवाले में पाप नहीं रह जाता, सर्वदा मौन धारण किये रहनेवाले का किसी से झगड़ा नहीं होता और सर्वदा जाग्रत रहनेवाले को कोई भय नहीं होता।

परदुःखं समाकर्ण्य स्वभाव-सरलो जनः ।
उपकारासमर्थत्वात्-प्राप्नोति हृदये व्यथाम् ।।४२४।।

– सरल स्वभाव के व्यक्ति दूसरे का दुःख सुनकर, यदि उसे दूर करने में असमर्थ भी हों, तो अपने हृदय में पीड़ा का अनुभव करते हैं।

परिच्छेदो हि पाण्डित्यं यदापन्ना विपत्तयः।
अपरिच्छेदकर्तृणां विपदः स्युः पदे पदे ।।४२५।।

– विपत्ति आने पर सही निर्णय लेना ही विद्वत्ता है। उचित विचार न करनेवाले को पग-पग पर संकट आते रहते हैं।

जीवन का अन्तिम पर्व

स्वामी विवेकानन्द

(स्वामीजी ने अपनी आत्मकथा नहीं लिखी, तथापि उनके स्वयं के पत्रों, व्याख्यानों और उनके गुरुभाइयों के संस्मरणों में कहीं-कहीं उनके अपने जीवन-विषयक बातें आ गयी हैं। उनकी ऐसी ही उक्तियों के संकलन अँग्रेजी में 'Swami Vivekananda on Himself' शीर्षक और बँगला में 'आमि विवेकानन्द बोलछि' नाम से ग्रन्थाकार ग्रन्थ प्रकाशित हुये है। दोनों ग्रन्थों के सहयोग से एवं कुछ विशेष सामग्री के साथ वर्तमान संकलन 'विवेक-ज्योति' के भूतपूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

बेलूड़ मठ, २६ जनवरी, १९०१ : बंगाल की धरती पर, खास कर मठ में, पैर रखते ही मेरे दमा का दौरा फिर शुरू हो जाता है। बंगाल छोड़ा कि फिर स्वस्थ !

अगले सप्ताह मैं अपनी माँ को तीर्थयात्रा पर ले जा रहा हूँ। तीर्थस्थानों की परिक्रमा करने में सम्भव है महीनों लग जायँ। हिन्दू विधवाओं की यह महान लालसा होती है। अपने स्वजनों के लिए मैंने सदा दु:ख ही बटोरा है। कम-से-कम उनकी इस इच्छा को मैं पूर्ण करने की चेष्टा कर रहा हूँ।[९]

ढाका, २० मार्च, १९०१ : अन्ततः मैं पूर्वी बंगाल में आ पहुँचा हूँ। मैं यहाँ पहली बार आया हूँ। मैं नहीं जानता था कि बंगाल इतना सुन्दर है। काश, तुमने यहाँ की नदियों को देखा होता – मानो निरन्तर प्रवहमान मीठे जल के समुद्र हों। सृजन के तारतम्य से सब कुछ हरा-भरा है ! यहाँ के गाँव सारे भारत में सबसे स्वच्छ और सुन्दरतम हैं।... मैं शान्त और प्रशान्त हूँ – और अन्ततः प्रतिदिन अनुभव कर रहा हूँ कि मेरे लिये वह पुरानी भिक्षावृत्ति तथा परिव्राजक का जीवन ही सर्वोत्तम है।...सब कुछ अपने-अपने स्वभाव के अनुसार चल रहा है। मुझमें अब समर्पण का भाव आ गया है।[१०]

ढाका, २९ मार्च, १९०१ : मेरी माँ, चाची और चचेरी बहन ढाका आये थे, ब्रह्मपुत्र नदी का बड़ा भारी स्नान-पर्व पड़ा था। जब भी कभी ग्रहों का कोई विशिष्ट तथा दुर्लभ संयोग उपस्थित होता है, तब बड़ा भारी जन-समुदाय नदी के किसी विशेष स्थान पर एकत्र हो जाता है। इस वर्ष एक लाख से भी अधिक लोगों की भीड़ हुई थी, नदी में मीलों तक केवल नाव-ही-नाव दिखायी पड़ती थीं।

यद्यपि नदी का पाट इस स्थान पर लगभग एक मील चौड़ा है, तो भी वह कीचड़ से भर गया था। लेकिन इसके बावजूद जमीन काफी ठोस रही और इसीलिए हम अपना स्नान-पूजा आदि सम्पन्न कर सके।

ढाका मुझे अच्छा लग रहा है। मैं अपनी माँ तथा अन्य महिलाओं को चन्द्रनाथ ले जा रहा हूँ। यह स्थान बंगाल के बिल्कुल पूर्वी सिरे पर है।[११]

ढाका, ३० मार्च, १९०१ : सर्वप्रथम मैं इस बात पर हर्ष प्रकट करता हूँ कि मुझे पूर्वी बंगाल में आने और देश के इस भाग की विशेष जानकारी प्राप्त करने का मौका मिला। यद्यपि मैं पश्चिम के अनेक सभ्य देशों में घूम चुका हूँ, पर अपने देश के इस भाग के दर्शन का सौभाग्य मुझे नहीं मिला था। अपनी ही जन्मभूमि बंगाल के इस अंचल की विशाल नदियों, विस्तृत उपजाऊ मैदानों और रमणीक ग्रामों का दर्शन पाने पर मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मैं नहीं जानता था कि इस देश के जल और स्थल सभी में इतना सौन्दर्य तथा आकर्षण भरा पड़ा है। किन्तु नाना देशों के भ्रमण से मुझे यह लाभ हुआ है कि अब मैं विशेष रूप से अपने देश के सौन्दर्य का मूल्यांकन कर सकता हूँ।

इसी प्रकार, पहले मैं धर्म-विषयक जिज्ञासा लिये विविध सम्प्रदायों में, कई ऐसे सम्प्रदायों में, जिन्होंने दूसरे राष्ट्रों के भावों को अपना लिया है, भटका करता था, दूसरों के द्वार पर भिक्षा माँगता था। तब मैं नहीं जानता था कि मेरे अपने देश का धर्म, हमारा राष्ट्रीय धर्म इतना सुन्दर और महान है। अनेक वर्षों पूर्व मुझे पता चला कि हिन्दू धर्म संसार का सर्वाधिक सन्तोषजनक धर्म है। अतः मुझे यह देखकर हार्दिक क्लेश होता है कि यद्यपि हमारे देशवासी अप्रतिम धर्मनिष्ठ होने का दावा करते हैं, पर हमारे इस महान देश में यूरोपीय ढंग के विचार फैलने के कारण उनमें धर्म के प्रति बड़ी उदासीनता आ गयी है।[१२]

(पूर्वी बंगाल) मुझे पसन्द आया। देखा, मैदानी भाग में पर्याप्त अन्न उत्पन्न होता है। जलवायु भी बुरी नहीं। पहाड़ी भाग का दृश्य भी बहुत सुन्दर है। ब्रह्मपुत्र की घाटी की शोभा अतुलनीय है। इस ओर की तुलना में लोग कुछ मजबूत और परिश्रमी हैं। ... जो कुछ करते हैं, अच्छे ढंग से करते हैं। भोजन में तेल-चर्बी का उपयोग अधिक करते हैं, वह ठीक नहीं

है। तेल-चर्बी अधिक खाने से शरीर मोटा हो जाता है। ... धर्म-भाव के सम्बन्ध में देखा, इस देश के लोग बड़े अनुदार हैं। प्राचीन प्रथा के अनुगामी हैं। बहुत-से लोग उदार भाव से धर्म शुरू करके फिर हठधर्मी बन गये हैं। ढाका के मोहिनी बाबू के मकान पर एक दिन एक लड़के ने किसी का एक फोटो लाकर मुझे दिखाया और कहा, "महाराज, कहिए तो, ये कौन हैं? अवतार हैं या नहीं?" मैंने उसे बहुत समझाकर कहा, "भाई, मैं क्या जानूँ?" तीन-चार बार कहने पर भी देखा, वह लड़का किसी भी तरह हठ नहीं छोड़ रहा है, अन्त में मुझे बाध्य होकर कहना पड़ा, "भाई, आज से अच्छी तरह खाया-पिया करो; तब मस्तिष्क का विकास होगा, पौष्टिक खाद्य के अभाव में तुम्हारा मस्तिष्क सूख गया है !" सुनकर सम्भव है, वह लड़का दुखी हुआ हो। परन्तु मैं क्या करूँ भाई, बच्चों को ऐसा न कहने से वे तो धीर-धीरे पागल हो जायेंगे। ...

सन्दर्भ

९. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ. ३६९; **१०.** The Complete Works of Swami Vivekananda, खण्ड ९, पृ. १५२-५३; **११.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ. ३७२; **१२.** The Complete Works of Swami Vivekananda, खण्ड ३, पृ. ४४९-५०;

दादी हो तो ऐसी हो

राधा भट्ट

उत्तराखण्ड की पनार घाटी के छोटे से गाँव की बात है, जिसे देश के नक्शे में ढूँढ़ना भी कठिन है। दुनिया से अनजाना, अकेला, दूरस्थ यह गाँव था 'धुरका'। यह बात आज से ६० वर्ष पुरानी है। धुरका गाँव में सिंचित भूमि नाममात्र को ही थी। मुख्य खेती मडुवा, झुंगरा, दालें और गेहूँ जैसी फसलें वर्षा के ऊपर निर्भर होती थीं। वर्षा और हिमपात प्रतिवर्ष नियमित रूप से निश्चित समय से होते थे।

उस समय उस गाँव के लोगों के लिये कोई सस्ते गल्ले की दुकानें नहीं थीं। आठ-दस किलोमीटर चढ़ाव-उतार के रास्ते पर चलने के बाद छोटी-सी चार-छह दुकानोंवाला ग्रामीण बाजार आता था। यहाँ विक्रय की वस्तुएं मुख्यत: कपड़ा, बरतन, गुड़ और नमक आदि थीं। मंडी में गुड़ आने पर ताजा और सस्ता गुड़ लेने वाले पैदल दो दिन चलकर हल्द्वानी मंडी जाया करते थे और अपने सिर एवं कंधों पर ढोकर हँसते-खेलते सालभर के लिये नमक और गुड़ ले आते थे।

पैंतीस परिवारों वाले इस गाँव के एक छोर पर हमारा घर था। उस समय की प्रथा के अनुसार परिवार में भोजन कराने का एक क्रम था – पहले घरभर के बच्चों को रसोई की परिधि के बाहर बैठाकर भोजन परोसा जाता। उनके खा लेने के बाद परिवार के पुरुष हाथ-पाँव धोकर धुली धोतियाँ पहने रसोई की परिधि के भीतर बैठकर भोजन करते। उसके बाद परिवार के महिलाओं की बारी आती थी, यानी मेरी माँ, चाची और दादी की। खाने की थाली सामने आये, उसके पहले मेरी दादी घर के आंगन की सबील पर खड़ी होकर पूरे गाँव को सुनाई दे, ऐसी ऊँची आवाज में कहतीं, "गाँववालों तुम सब लोगों के घरों में खाना पक गया? सबने खा लिया?"

उस गाँव में यह रोज लगने वाली आवाज थी। लोग इसके अभ्यस्त थे। दादी की आवाज सुनने के बाद लोग अपने छोटे और एक-सी ऊँचाई के घरों से बाहर निकल कर कहते, "हाँ खाना बन रहा है।" कोई कहता - "हम खाना खा रहे हैं" या फिर यह भी कि "हम खा चुके हैं"।

"अच्छा, तो अब मैं भी खाती हूँ" कहकर दादी अपनी रसोई में आ जाती। दादी उस गाँव की सबसे सयानी महिला थीं। गाँव की भूख को मिटाने का दादी और बीमारियों को दूर करने का प्रबन्ध मेरे दादा स्वनियुक्त जिम्मेवारी से करते थे।

नयी फसल का अनाज घर में आने के पहले यदि किसी कम भूमिवाले परिवार का अनाज-भण्डार समाप्त हो जाता, तो दादी उसे किसी ऐसे परिवार से अनाज विनिमय में दिला देतीं, जिसके पास अपनी जरूरत की पूर्ति से कुछ अधिक अन्न होता था। इसमें दादी केवल निमित्त बनती थीं। यह तो जानी-समझी परम्परागत बात थी कि जिस परिवार के पास, परिवार छोटा होने या भूमि अधिक होने से उसकी जरूरत से थोड़ा भी अधिक अन्न होता, वह ऐसे मौकों पर दूसरों को देता ही था। नयी फसल आने के बाद उसका अन्न वापस लौटा दिया जाता था। ऐसी थी मेरी दादी ! ○○○

(मैत्री, जून २०१४, पृ. २२६ साभार)
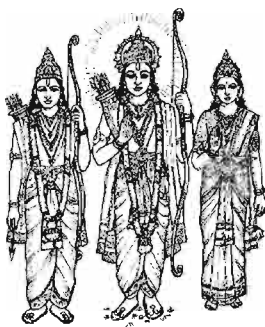
धर्म-जीवन का रहस्य (६/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति के भूतपूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

वह सूत्र उन्होंने दिया। आकृति ही नहीं आश्रम की घड़े की आकृति के साथ-साथ उसे अग्नि में जब परिपक्व करते हैं, तो इसका अभिप्राय है कि अगर वैराग्य की अग्नि में अन्त:करण परिपक्व हो गया है और तब कोई निवृत्ति का आश्रय लेगा, तो वह स्वयं भी और दूसरों को भी धन्यता प्रदान करेगा। अगर वैराग्य जीवन में है ही नहीं और वैराग्य की महिमा मात्र सुनकर अगर वह व्यक्ति वैराग्य का केवल एक बहिरंग स्वरूप स्वीकार करेगा, तो वह न उसके लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा और न समाज के लिए कल्याणकारी होगा। इसका अभिप्राय मानो यह हुआ कि निवृत्ति की चाहे जितनी महिमा हो, किन्तु जिसकी मन:स्थिति उस प्रकार की नहीं है, उसके लिए वह निवृत्ति का मार्ग नहीं है, उसके लिए तो प्रवृत्ति मार्ग उपयुक्त है। इसीलिए भगवान राम ने जब बालिवध की प्रतिज्ञा किया, या महाभारत के युद्ध में जब अर्जुन निवृत्ति की बात करते हैं, जब वे भगवान श्रीकृष्ण से यह कहते हैं कि मैं अपने स्वजनों का वध क्यों करूँ? क्या राज्य के लिए, सम्पत्ति के लिए? मैं तो भिक्षा माँगकर खा लूँगा। मैं राज्य छोड़ दूँगा, लेकिन यह अनर्थ नहीं होने दूँगा। तो वह भी त्याग और निवृत्ति की बात ही कह रहे थे। और रामायण में? वहाँ भगवान के सखा के रूप में अर्जुन और यहाँ भगवान के सखा के रूप में सुग्रीव। जब भगवान राम ने प्रतिज्ञा किया कि मैं बालि का एक ही वाण से वध करूँगा, तो अचानक सुग्रीव को एक वैराग्य की सी अनुभूति हुई और तब उन्होंने भगवान से कहा, महाराज न तो मैं बालि का वध चाहता हूँ, न मुझे संपत्ति चाहिए, न सुख चाहिए, न राज्य चाहिए और उन्होंने कहा कि मुझे तो ऐसा लग रहा है कि मेरा मन पूरी तरह से शान्त हो गया है।

नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला। ४/७/१५

आपकी कृपा से मेरा मन बिलकुल निष्पन्द हो गया, शान्त हो गया, चंचलता छूट गई। मुझे ऐसा लगता है कि

सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं।
माया कृत परमारथ नाहीं।। ४/७/१७
बालि परम हित जासु प्रसाद।
मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा।। १८
सपनें जेहि सन होइ लराई।
जागें समुझत मन सकुचाई।।१९
अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती।
सब तजि भजन करौं दिन राती।। २०

जो वाक्य अर्जुन ने भगवान कृष्ण से कहा, ठीक वही वाक्य यहाँ पर सुग्रीव ने भगवान राम से कहा। वही वाक्य ज्यों का त्यों, उससे मिलता जुलता वाक्य लक्ष्मणजी ने निषादराज से कहा। जब निषादराज के मन में यह दु:ख हुआ कि कैकेयी कितनी मंद बुद्धिवाली हैं, जिन्होंने हमारे प्रभु को इतना कष्ट दे दिया, तो लक्ष्मणजी ने कहा कि नहीं, नहीं, यह सत्य नहीं है, यह संसार है –

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा
देखिअ सपन अनेक प्रकारा।। २/९३/२
सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ।।२/९२

यह सृष्टि तो स्वप्नवत मिथ्या है, कौन शत्रु और कौन मित्र? वही बात सुग्रीव कह रहे हैं और वही बात लक्ष्मणजी कह रहे हैं। सुग्रीव भी वैराग्य की बात कह रहे हैं और लक्ष्मणजी भी यही बात कहते हैं –

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा।। २/९३/२
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी।
परमारथी प्रपंच बियोगी।। ३
जानिअ तबहिं जीव जब जागा।
जब सब बिषय बिलास बिरागा।। २/९३/८

जब विषयों से वैराग्य हो जाय, तब समझना चाहिए कि

जीव जाग गया। इसलिए

सखा परम परमारथु एहू।

मन क्रम बचन राम पद नेहू।। २/९३/५

तो दोनों बिलकुल एक ही बात कह रहे हैं। किन्तु अन्तर तो है न ! लक्ष्मण की वाणी सुनकर गोस्वामीजी ने बहुत से सूत्र दे दिये। पूछा गया, लक्ष्मणजी ने कितनी देर तक उपदेश दिया? एक घंटा, पौन घंटा, डेढ़ घंटा? तो उन्होंने समय का जो उत्तर दिया वह बड़ा अनोखा था। उन्होंने कहा

कहत राम गुन भा भिनुसारा। २/९४/२

भगवान राम के गुणों का वर्णन करते-करते सबेरा हो गया। चौपाई की पंक्तियाँ तो इतनी कम हैं कि पाँच मिनट में पूरी हो जाती हैं। पाँच मिनट से भी कम में पूरी करने वाले मिलेंगे। जो तीव्र गति से पाठ करने वाले हैं, वे तो शायद एक ही मिनट में समाप्त कर दें। लेकिन कितनी देर तक चलता रहा? गोस्वामीजी की भाषा तो बड़ी सांकेतिक है। उन्होंने कहा, कहते और सुनते सबेरा हो गया। उन्होंने यह सबसे बड़ी बात बता दी। कथा का उद्देश्य ही यही है, कथा उतनी देर चलनी चाहिए जब जीवन में सबेरा हो जाय, जीवन में प्रकाश आ जाय, अंधकार मिट जाय। जागृत स्वयं, जाग्रत लक्ष्मण और सोते से दिखाई पड़े निषादराज, तो लक्ष्मणजी ने अपने उपदेश के द्वारा उन्हें जगा दिया। यह है संवाद। वही भाषा जब सुग्रीवजी ने कही, भई हँसने की बात पर कोई हँसे तब तो ठीक ही लगता है, पर कोई बड़ी गम्भीर बात कही जा रही हो और सामने वाला व्यक्ति हँसने लगे, तब तो वह श्रोता की अशिष्टता मानी जायेगी या बोलने वाले की कोई ऐसी बात होगी, जिसे सुनकर सुनने वाले को हँसी आ रही है। तो इतना ऊँचा सुग्रीव का भाषण सुनकर भगवान पर क्या प्रभाव पड़ा? गोस्वामीजी ने लिखा, हँसे ही नहीं, थोड़ी देर तक हँसते ही रहे।

सुनि बिराग संजुत कपि बानी।

बोले बिहँसि राम धनुपानी।। ४/७/२२

श्रीराम बड़े संतुलित रूप से हँसी का प्रयोग करते हैं, कभी मन में मुस्कुरा लेते हैं, कभी होंठों पर मधुर मुस्कुराहट, कभी हँसना और बिहँसना – हास्य का प्रवाह जब बिल्कुल इतना दिखाई दे कि वह रुकता ही न हो। तो भगवान खूब हँस रहे हैं। हँस रहे हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि भइ, आप पूजा के आसन पर बैठ करके प्राणायाम करने के लिए नाक पर अंगुली रखकर प्राण पर संयम कर रहे हों और तभी यदि बगल में आकर आपका छोटा बच्चा भी उसी तरह से नाक पर अंगुली रखकर करने लगे, तो उसे देखकर आपको हँसी आए बिना नहीं रहेगी। बच्चे की चेष्टा पर हँसी ही आयेगी। वह तो न प्राण का संयम जानता है, न प्राणायाम का अर्थ जानता है। वह तो देखकर नाटक कर रहा है। तो भगवान खूब हँसे, सुग्रीव ने बचकाना एक रटाया हुआ सा जो भाषण था, उसे दुहरा दिया। भगवान कृष्ण और भगवान राम की बोलने की शैली में थोड़ा अन्तर है। अन्तर होता ही है। अवतार जब आते हैं, तो अपनी-अपनी शैली में अपनी बात कहते हैं। भगवान कृष्ण तो बिना किसी संकोच के सीधे ही कह देते हैं। वे भी अर्जुन की बात को सुनकर हँस ही रहे हैं। अर्जुन को पसीना आ रहा है, अर्जुन धनुष-बाण छोड़कर बैठ गया है। इतनी ऊँची बाते कर रहा है। गीता (२-१०) में भी वही बात आती है 'प्रहसन्निव' – हँसते हुए। हँसी तो दोनों को आ गई, श्रीकृष्ण को भी और श्रीराम को भी। पर भगवान राम ने दूसरी भाषा का प्रयोग किया और भगवान कृष्ण ने दूसरी भाषा का प्रयोग किया। अर्जुन से उनकी बड़ी पुरानी मित्रता थी। तो हँसकर के उन्होंने यही कहा कि अर्जुन, तुम जो कुछ कह रहे हो, उसे सुनकर लगता तो यही है – **अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे**। तुम जो शोक करने योग्य नहीं है, उस पर शोक कर रहे हो और जब तुम बोल रहे हो, तो ऐसा लग रहा है कि कोई बड़ा प्रज्ञासम्पन्न पुरुष बोल रहा है। भगवान ने तो यह भी कह दिया कि तुम्हारी बात तो विरोधाभास युक्त है। भगवान ने आधा ही कहा। भगवान राम ने कहा –

सुनि बिराग संयुत कपि बानी। ४/७/२२

यह गोस्वामीजी की व्यंग की शैली है। वाणी किसकी है? बोले 'कपि बानी'। बन्दर का स्वभाव तो आप जानते ही हैं। इस डाल से उस डाल पर कब कूद पड़ेगा, कभी नीचे छलांग लगायेगा, कभी ऊपर। बन्दर की छलांग प्रभु ने देखी, मुस्कराए और यही कहा –

जो कछु कहेउ सत्य सब सोई। ४/७/२२

तुमने जो कुछ कहा, सब सत्य है। यह नहीं कह दिया कि तुम भीतर से तो खोखले हो, व्यर्थ की बात कर रहे हो। उन्होंने कह दिया कि हाँ तुमने जो बात कही वह सच है। पर भगवान का तात्पर्य यह है कि भइ, यह सच तुम्हारे लिए

सच नहीं है। तुम जो कह रहे हो, वह सिद्धान्तत: सत्य है, पर यह सत्य तो लक्ष्मण के लिए सत्य हो सकता है, सुग्रीव के लिए तो वह सत्य नहीं है। भगवान तो यह कहते हैं कि न, न। नहीं मित्र ! मैंने जो वाक्य कहा है, वह भी तो मिथ्या नहीं हो सकता। बड़ी दार्शनिक भाषा है। भगवान ने कहा कि मैंने प्रतिज्ञा किया है कि मैं बालि को मारूँगा। सुग्रीव कह रहे हैं, शत्रु-मित्र मिथ्या है। भगवान ने कहा सुग्रीव, तुमने जो ज्ञान-वैराग्य की बातें कही, शास्त्र में तो उसका प्रतिपादन ही किया गया है। पर मुझे जब तुमने ईश्वर माना है, तो मैंने भी जो कहा है, वह भी सत्य होगा। बड़ा गहरा सूत्र है। तुम जो कह रहे हो, वह एक तुम्हारा सत्य है, पर वह तुम्हारा सत्य केवल सुना-पढ़ा और रट लिया गया है। और ईश्वर तो परम सत्य ही बोल रहा है। उसका अभिप्राय यह था कि तुम यह निर्णय करो कि इन दोनों सत्य में से कौन सा श्रेष्ठ सत्य है? पर सुग्रीव तो उसका अर्थ समझने की योग्यता नहीं रखते थे। उनको यह लगा कि भगवान को यह चिन्ता हो रही है कि अगर मैं बालि का वध नहीं करूँगा, तो मेरी प्रतिज्ञा झूठी हो जायेगी। अब सोचिए , क्या भगवान को इसी बात की चिन्ता हो रही थी कि मेरी प्रतिज्ञा झूठी हो जायेगी? ऐसे सत्यवादी भगवान राम कभी नहीं थे। ऐसे सत्यवादी तो इतिहास में बहुत हुए हैं। महाभारत काल में तो बहुत थे। इस काल में भी ऐसे लोग हुए हैं कि मुहँ से जो शब्द निकला, तो चाहे जैसे भी उसे पूरा होना ही चाहिए और पूरा नहीं होगा, तो असत्य हो जायेगा। श्रीराम का सत्य तो ऐसा नहीं है। वे तो आगे चलकर भी चाहे कुछ कहते हैं, फिर बदल जाते हैं। सुग्रीव जब बहुत दिनों तक मिलने नहीं आया तो कहला दिया कि

जेहिं सायक मारा मैं बाली।
तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली ।। ४/१८/५

जिस बाण से मैंने बालि का वध किया था, उसी बाण से कल उस सुग्रीव का वध करूँगा। अगर सत्यवादी होते, तो दूसरे दिन वे सुग्रीव का वध कर देते। लेकिन ऐसा तो उन्होंने नहीं किया। हमारे पुराने वक्ताओं को बड़ी चिन्ता हो जाती थी। वह तो समय होता है। हमारे पुराने वक्ताओं को लगता था कि अगर ऐसा होगा, तो अनर्थ हो जायेगा। इसका तात्पर्य तो यह होगा कि श्रीराम झूठ बोल गये। तो वे बेचारे अक्षरों को तोड़-मरोड़ कर श्रीराम को सत्यवादी सिद्ध करने का एक प्रयास करते थे। वे कह देते थे कि भगवान राम ने तो यह कहा ही नहीं कि मैं उसी बाण से कल सुग्रीव का वध करूँगा। भगवान ने तो यह कहा, लक्ष्मण ! **जेहिं सायक मारा मैं बाली** – जिस बाण से मैंने बालि को मारा, **तेहिं सर हतौं** –अगर उस बाण से मैं सुग्रीव को मार दूँगा, तो **मूढ़ कहँ काली** – लोग कल मुझे मूर्ख कहने लगेंगे। इसलिए नहीं मारूँगा। तो वक्ता का पाण्डित्य था और लोगों को संतोष हो जाता था कि राम के सत्य की रक्षा हो गई। अब इतनी घुमावदार भाषा के द्वारा सत्य की रक्षा का जो प्रयास है, कितना हास्यास्पद है। भगवान यह क्या कहने लगे कि इस बाण से सुग्रीव को मारूँ, तो लोग मुझे मूर्ख कहेंगे। भगवान तो स्पष्ट ही कह रहे हैं। पर भगवान राम का सत्य तो केवल शाब्दिक सत्य नहीं है। वे जानते हैं कि धर्म का यही अर्थ, तो अनर्थ करता है। शब्द हो गया सत्य, उद्देश्य हो गया असत्य। इसका अर्थ हुआ कि अगर कोई डाक्टर किसी रोगी को देखकर यह निर्णय करे कि कल आपरेशन करेंगे, पर रात को अगर वह रोग ठीक हो गया, फोड़ा फूट गया अथवा आपरेशन की आवश्यकता नहीं रही। और यदि वह डाक्टर यह कहे कि वैसे तो तुम्हारा रोग ठीक हो गया है, पर सत्य की रक्षा के लिए तो मैं आपरेशन करूँगा ही। तो क्या आप ऐसे सत्यवादी डॉक्टर के पास कभी जाएँगे कि अच्छा यह सत्यवादी डॉक्टर मिल गया। आवश्यकता नहीं है, तब भी यह आपरेशन करेगा। भगवान राम का सत्य तो मानो उद्देश्यमूलक था। कल मारूँगा, इसका सांकेतिक अर्थ यह था कि अरे भाई, अगर बिना मारे ही काम बन जाता है, तो थोड़े ही ऐसा करूँगा? वैसे लक्ष्मणजी भी आश्चर्यचकित हो गये कि प्रभु मारने के लिए कैसे कह रहे हैं। पर वे सावधान थे, कह तो रहे हैं, पर यह कल मारूँगा, यह शब्द उनको थोड़ा संदिग्ध लगा और तब उन्होंने कहा कि कल पर क्यों टाला जाय? मैं जाता हूँ और आज ही मार देता हूँ। तब पता चल गया कि श्रीराम का जो सत्य है, वह शब्दगत सत्य नहीं है, भावगत है, उद्देश्यगत है।.... ❖ **(क्रमशः)** ❖

सारगाछी की स्मृतियाँ (२५)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराज जी के साथ हुये वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और ब्रह्मचारी बोधमय चैतन्य ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पृष्ठों में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

स्वामी चण्डिकानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण-साम्राज्य में संगीत के लिये विख्यात हैं। वे सारगाछी में आये थे। वे भी श्रीमाँ के शिष्य थे। वे प्रेमेश महाराज जी की बहुत श्रद्धा करते थे। वे बहुत देर तक उनके चरणों में दण्डवत प्रणाम करते हुये पड़े रहे। उसके बाद वे अपने संगीत के सम्बन्ध में बीच-बीच में चर्चा करने लगे। महाराजजी के शरीर में अनेकों बीमारियाँ हैं और चिकित्सा से कोई विशेष लाभ नहीं देखकर उन्होंने सेवक को एक पाचन दवा बनाने के लिये कहा। उन्होंने कुछ नीम की पत्तियाँ, निश्चिन्दा-पत्ता, बेल-पत्ता और दो-तीन प्रकार की पत्तियाँ उबाल कर उसके रस को महाराज को खाली पेट में पीने के लिये कहा। उन्होंने एक दूसरी दवा भी बतायी – आँवला-चूर्ण, चीनी और पिप्पुल-खण्ड को एक परिमाण में उबालकर उसका मोरब्बा बनाकर प्रतिदिन महाराजजी को एक चम्मच खिलाना है।

स्वामी चण्डिकानन्द जी महाराज कुछ दिन रहने के बाद एक दिन प्रेमेश महाराज जी के दोपहर के भोजन के पहले आये और महाराजजी को प्रणाम करके विदा लेकर चले गये। उनकी रेलगाड़ी शाम को थी। महाराजजी दोपहर में विश्राम कर रहे थे, उनके कमरे का दरवाजा बन्द था। सेवक बाहर बैठकर कुछ लिखाई-पढ़ाई कर रहा था। अचानक चण्डिाकानन्द महाराजजी आ गये। उन्होंने पूछा – "महाराजजी क्या कर रहे हैं?" उसी समय सेवक दरवाजा खोलने के लिये गया, तो उन्होंने इशारा करके मना कर दिया और जमीन पर लेटकर दण्डवत होकर महाराजजी के कमरे की चौखट पर बहुत देर तक सिर रखकर प्रणाम करके मौन, बिना कुछ बोले ही चले गये।

सबेरे बहरमपुर से कुछ भक्त आये हुये हैं। विभिन्न अवतारों की बातें हो रही थीं। उन लोगों के नाम पर अनेकों प्रकार के चमत्कार, सिद्धाई और शक्ति आदि की चर्चा चल रही थी।

प्रेमेश महाराज – प्रत्येक दिशा में चारों ओर अवतार उत्पन्न हो रहे हैं! सामान्य लोग तो स्वयं कुछ धर्म नहीं करेंगे, दूसरे से धर्म-पालन कराकर नचाना चाहते हैं और मजा देखना चाहते हैं। मुझे अवतार बनाने का कितना प्रयास लोगों ने किया था! कोई हमारे मुँह में ज्योति देखता है! भक्त तीन प्रकार के होते हैं – १. मठ का भक्त – उन लोगों का उद्देश्य है – उत्सव, भण्डारा, प्रणाम, दशहरा में विजयादशमी का पत्र आदि लिखकर बन्धुत्व-भाव बनाये रखना और बीच-बीच में साधु को घर में ले जाकर भोजन कराना। २. मिशन का भक्त – विद्यालय, प्रधानाध्यापक, सचिव, कार्यालय तथा शिक्षकता यह सब। ३. ठाकुरजी का भक्त – बहुत कम ही होते हैं। किन्तु पहले के दो प्रकार के भक्तों में से किसी की भी उपेक्षा या घृणा नहीं करनी चाहिये। क्या करोगे, कोई भी स्वतंत्र नहीं है। सभी प्रकृति के अधीन हैं। 'प्रकृतेः क्रियमाणानि।'

१२-६-१९६०

प्रेमेश महाराज – ज्ञान होने से व्यक्ति संसार को ब्रह्ममय देखता है, वहाँ सुन्दर और खराब का प्रश्न नहीं है। विष्ठा और चन्दन एक समान बोध होगा। तब तो संसार का कोई बोध ही नहीं रहेगा। यदि वह भाव रहता है, तो यहाँ अच्छा-बुरा और सुख-दु:ख सब रहेगा। जिसके पास दृष्टि है, विवेक है, उसे यह संसार दुःखमय प्रतीत होता है। यह संसार जितना ही दुःखमय अनुभव होगा, उतना ही तो इसे छोड़ने की इच्छा होगी। और किसी चिर स्थायी आनन्द की ओर मन का झुकाव होगा, आकर्षण होगा।

असली बात है मन को तल्लीन कर देना। शुद्धचित्त, ईश्वर की कृपा और भोगान्त – भोगों की समाप्ति, ये सभी एक ही वस्तु हैं। निष्काम कर्म करते-करते चित्त शुद्ध, पवित्र होता है और सत्य प्रतिभासित होता है। तब लगता है कि ईश्वर की कृपा से हुआ। किन्तु जब तक देहात्म-बुद्धि रहती है, तब तक एक मानस-मूर्ति – मन में मूर्ति का

आश्रय लेकर उपासना करनी चाहिये।

यदि उन्नत मन है, तो जप से ध्यान अच्छा है। जप कर रहा है और इधर मन कहाँ-कहाँ घुम रहा है ! ध्यान करते समय मन की गति समझ में आती है।

यह संसार रजोगुण का स्थान है। यहाँ रहने से ही धीरे-धीरे भोग की वस्तु जुटती रहेगी और मन कब भोग की ओर झुक गया, इसे समझ ही नहीं सकोगे।

प्रश्न – शरीर के नाश के साथ, चैतन्य का विनाश नहीं होता है, उसे कैसे समझूँगा?

महाराज – एक दाव को गरम करके उसे ठंडा करो। उसकी गर्मी कहाँ चली गयी? उसकी गर्मी विराट ताप, गर्मी के साथ मिल गयी?

प्रश्न – शरीर की सभी इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य कर रही हैं। मैं द्रष्टा हूँ, मैं उसी चैतन्य वस्तु में हूँ। क्या 'यथाकाशस्थितो' के जैसा?

महाराज – मैं चैतन्य वस्तु में हूँ, ऐसा नहीं। मैं ही चैतन्य वस्तु हूँ। किसके समान हूँ, यह मैं तुमको समझा नहीं सकता, इसे स्वयं ही समझना पड़ता है। तुम्हें एक बात कहता हूँ, "नाम-यश ही श्रेष्ठ मन की अंतिम कमजोरी है – "Fame is the last infirmity of noble mind."। क्या जानूँ बाबू, तुम लोगों को होता है या नहीं, मुझे तो होता है। किसी की प्रशंसा करते ही छाती फूल जाती है और निन्दा करते ही सिकुड़ जाती है।

१४-६-१९६०

कोई एक भक्त असम से महाराजजी के लिये एक चटाई लाये थे। एक व्यक्ति ने कहा, "महाराजजी चटाई का महत्व ठीक से समझ पायेंगे, क्योंकि उधर ही उनका जन्म हुआ है।"

महाराज जी ने सुनकर हँसी करते हुये कहा – गृहस्थों की यही एक बात है – जन्मभूमि की। वे लोग जन्मभूमि के संस्कारों को छोड़ना नहीं चाहते हैं।

यहाँ (सारगाछी में) कुछ लोग अतिथि-निवास बनाने के लिये २००० रुपये दिये थे। नींव की खुदाई हो गयी थी। मैं आकर बलपूर्वक बुद्धिमानी से रुपया वापस करा दिया।

हमारे साधुओं में से अधिकांश लोग यह नहीं जानते हैं कि वे लोग संघ के साधु हैं। वे लोग मिशन-मिशन करते हुये कर्म करते रहते हैं। वे लोग मिशन के साधु नहीं हैं, इस बात को नहीं जानते हैं। मठ के साधु बाहर जाकर कुछ सेवा-कार्य करके फिर मठ में वापस चले आते थे। किन्तु आजकल मिशन मठ को निगल गया है, अपने में मिला लिया है। पहली बार स्वामी विवेकानन्द जी ने बलराम बाबू के घर में मिशन की सभा की थी। मठ की कार्यकारिणी समिति का नाम ट्रस्टी है। मिशन के लिये संचालन समिति है। प्रत्येक तीन साल में एक बार साधारण-सभा होती है और मात्र एक बार सम्मेलन – Convention हुआ है। १९२६ ई. में सभी भक्तों के साथ वह सभा हुई थी। तुम लोगों को तो कार्य करना होगा। किन्तु कार्य के सम्बन्ध में कहता हूँ – अधिक कार्य करने से साधुता की रक्षा नहीं हो पाती। मास्टर महाशय ने तो कुछ प्रबन्ध ही लिखा था। उन्होंने पाँच खण्डों में कथामृत (श्रीरामकृष्ण-वचनामृत) प्रकाशित होने के पहले अपने इन सभी प्रबन्धों को एक छोटी-सी पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिया। लगता है कि उन्होंने सोचा था कि वे अब अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहेंगे। वे मिशन के विरुद्ध में थे। वे कहा करते थे, "ठाकुर ने कहा है, – पहले काली-दर्शन, उसके बाद दान-ध्यान, पहले ईश्वर-दर्शन, उसके बाद परोपकार, दूसरों की सेवा।" काशी में श्रीमाँ सारदा देवी हैं। उन्होंने सेवाश्रम को दस रूपये देकर कहा था, देखती हूँ, स्वयं ठाकुर विराजमान हैं।" महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) ने तो मास्टरमहाशय को बुलवाया। मास्टर महाशय ने हाथ जोड़कर कहा, "जब श्रीमाँ ने कहा है, तब मानना ही पड़ेगा।

यदि ईश्वर ही वास्तविक लक्ष्य रहे, तो कर्म कूली मजदूर का कार्य हो जाता है। हमारे कर्म कर्म-क्षय करके उनकी (ईश्वर की) ओर बढ़ने के लिये हैं। कर्म में ही तो असली परीक्षा है। कर्म नहीं करने से तो सभी परमहंस हैं। कर्म में काम और क्रोध को वश में रखना बहुत कठिन होता है। कर्म में सबकी सभी प्रकार की ढोंगबाजी प्रकट हो जाती है। इसलिये तो स्वामीजी कर्म की व्यवस्था करके गये हैं। स्वामीजी ने भी जिस कर्मयोग की बात कही है, उसका लक्ष्य 'आत्मनो-मोक्षार्थम्' – आत्मकल्याण है। उन्होंने अपने शिष्य (शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय) को स्पष्ट भाषा में कहा था, 'मैं निवृत्तिमूलक कर्म – निष्काम कर्म की बात कह रहा हूँ।" ❖ **(क्रमशः)** ❖

सब कुछ परमात्मा का है

स्वामी आत्मानन्द

(रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.) के संस्थापक ब्रह्मलीन श्रीमत् स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने आकाशवाणी हेतु सामयिक विषयों पर विचारोत्तेजक वार्ताएँ लिखी थीं, जो आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों द्वारा प्रसारित होती रहीं हैं तथा काफी लोकप्रिय भी हुई हैं। इनकी उपादेयता को देखकर इन्हें आकाशवाणी, रायपुर के सौजन्य से क्रमश: 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

महात्मा गाँधी अपने समीप के धनिकों को बारम्बार 'ट्रस्टीशिप' का उपदेश देते थे। उनका तात्पर्य यह था कि सम्पत्ति का स्वामी अपने को मत मानो, बल्कि यह समझो कि ईश्वर ही सम्पत्ति का स्वामी है और तुम उसकी सुरक्षा और देख-रेख करने वाले ट्रस्टी हो। यह एक अमूल्य उपदेश है। जब मैं अपने को सम्पत्ति का स्वामी मानता हूँ, तो उसके व्यय में किसी का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करता, मैं मनमाने खर्च किये जाता हूँ। किसी का अंकुश मुझे अच्छा नहीं लगता। पर यदि मेरे अन्त:करण में यह भावना बन जाय कि सम्पत्ति के किसी भी अंश का दुरुपयोग न होने पाये। सम्पत्ति पर स्वयं के स्वामित्व की भावना उसे साधारणतया दूसरे के काम में नहीं लगने देती, पर ट्रस्टीशिप का भाव कहता है कि यह सम्पत्ति दूसरों की सेवा के लिए समर्पित है। ट्रस्टी सम्पत्ति को भगवान् की थाती के रूप में दु:खियों, पीड़ितों और असहायों की सेवा में लगाकर धन्यता का बोध करता है। विशेषकर, मठ-मन्दिर और सार्वजनिक न्यासों की सम्पत्ति को जो अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए खर्च करता है, उसके समान निन्दित व्यक्ति और कोई नहीं माना गया।

इस सम्बन्ध में वाल्मीकि रामायण में एक उद्बोधक कथा आती है। एक कुत्ते ने प्रभु राम के दरबार में आकर फरियाद की कि स्वार्थसिद्ध नामक एक ब्राह्मण ने उसके सिर पर अकारण ही प्रहार किया है। उस ब्राह्मण को रामचन्द्र जी के समक्ष प्रस्तुत किया गया। वह बोला – "हे राघव, मैं भूखा था। सामने कुत्ते को बैठा देखकर मैंने उससे हटने को कहा। उसके न हटने पर मुझे क्रोध आ गया और मैंने उस पर प्रहार किया। महाराज, मुझसे अवश्य ही अपराध हुआ है, आप मुझे जो चाहें दण्ड दें।"

राजा राम ने अपने सभासदों से ब्राह्मण को दण्ड देने के लिये परामर्श किया। सबने एक स्वर से निर्णय दिया – "ब्राह्मण को भले ही उच्च कहा गया हो, पर आप तो परमात्मा के महान अंश हैं, अत: आप अवश्य ही उचित दण्ड दे सकते हैं।" इस बीच कुत्ता बोला – "प्रभो, मेरी इच्छा है कि आप इसे कलिंजर मठ का मठाधीश बना दें।" यह सुनकर सबको आश्चर्य हुआ, क्योंकि तब तो ब्राह्मण को भिक्षावृत्ति से छुटकारा मिल जाता और मठाधीश होने के बाद उसे सारी सुख-सुविधाएँ प्राप्त हो जातीं। रामचन्द्र जी ने कुत्ते से ब्राह्मण को मठाधीश बनाने का प्रयोजन पूछा। इस पर कुत्ता बोला – " हे राजन्! मैं भी पिछले जन्म में कलिंजर का मठाधीश था। मुझे वहाँ बढ़िया-बढ़िया पकवान खाने को मिलते थे। यद्यपि मैं पूजा-पाठ करता था, धर्माचरण करता था, तथापि मुझे कुत्ते की योनि में जन्म लेना पड़ा। इसका कारण यह है कि जो व्यक्ति देव, बालक, स्त्री और भिक्षुक आदि के लिए अर्पित धन का उपभोग करता है, वह नरकगामी होता है। यह ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधी और हिंसक स्वभाव का तो है ही, साथ ही मूर्ख भी है, अत: इसको यही दण्ड देना उचित है।"

इस कथा के द्वारा यही बात ध्वनित की गयी है कि जो सार्वजनिक सम्पत्ति को अपने ही स्वार्थ के लिए लगाता है, उसकी दशा अन्त में श्वान की जैसी होती है। इसके साथ ही यह बात भी सत्य है कि अपनी सम्पत्ति का भी केवल अपने स्वार्थ के लिए उपयोग मनुष्य को नैतिक दृष्टि से नीचे गिरा देता है। गीता की भाषा में मनुष्य को यह सम्पत्ति प्रकृति के यज्ञ-चक्र से प्राप्त हुई है, अत: उसे उसका उपयोग यज्ञ-चक्र को सुचारु रूप से संचालित होने के निमित्त करना चाहिए। जैसे यदि कहीं पर वायु का अभाव पैदा हो, तो प्रकृति तुरन्त वहाँ वायु भेज देती है, उसी प्रकार जहाँ सम्पत्ति का अभाव है, उसकी पूर्ति में जिसके पास सम्पत्ति है, उसका उपयोग होना चाहिए। यही सम्पत्ति के द्वारा यज्ञ-चक्र को पूर्ण बनाना है। इसी को ट्रस्टीशिप कहते हैं। यदि ऐसा न कर व्यक्ति सम्पत्ति का भोग स्वयं करे, तो उसे गीता में 'स्तेन' यानी चोर की उपाधि से विभूषित किया गया है।

अपने पास जब आवश्यकता से कुछ अधिक हो जाय, तो उसका समाज के अभावग्रस्त लोगों में वितरण करना 'अपरिग्रह' कहलाता है। यह अपरिग्रह और ट्रस्टीशिप एक दूसरे के पूरक हैं। सम्पन्न लोगों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि यदि उन्होंने ट्रस्टीशिप की भावना को जीवन में अंगीकार न किया और तदनुरूप आचरण को न बदला, तो अभावग्रस्त लोगों के हृदय की टीस, उनका विक्षोभ और आक्रोश उनके जीवन को अशान्त और तनावों से युक्त बना देगा। ○○○

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कथा-कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन 'विवेक ज्योति' के भूतपूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

४१. सच्चे सुख का स्वरूप

रोम में एक बड़ा धनी व्यक्ति था। एक दिन उसे पता चला कि अब उसके पास केवल कुछ करोड़ रुपये ही बच गये हैं। उसने कहा, "कल मैं क्या करूँगा?" ऐसा कहकर उसने तत्काल आत्महत्या कर ली। कुछ करोड़ रुपये होना उसके लिये निर्धनता थी। परन्तु हम लोगों के लिए तो वह सारे जीवन की आवश्यकता से भी अधिक है। वस्तुतः सुख क्या है और दु:ख क्या है? इनकी मात्रा घटती रहती है, निरन्तर घटती रहती है। जब मैं छोटा था, तो सोचता था कि यदि मैं घोड़ेगाड़ी का कोचवान बनकर गाड़ी को इधर-उधर घुमाता रहूँ, तो वही मेरे सुख की पराकाष्ठा होगी। परन्तु अब मुझे वैसा नहीं लगता। तुम कौन-से सुख के साथ चिपटे रहोगे? यही एक बात हम सभी को समझने की चेष्टा करनी चाहिये और यही वह अन्तिम अन्धविश्वास है, जो हमें छोड़ना है। प्रत्येक के सुख की धारणा अलग-अलग है। मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा है, जो प्रतिदिन अफीम का गोला खाये बिना सुखी नहीं हो पाता। वह एक ऐसे स्वर्ग का स्वप्न देखा करता है, जहाँ की मिट्टी अफीम से बनी होगी ! परन्तु मेरे लिए तो वह बड़ा ही निकृष्ट स्वर्ग होगा।

अरब देश के काव्य में हम बारम्बार पढ़ते हैं कि स्वर्ग मनोहर उद्यानों से परिपूर्ण है और उसमें अनेक नदियाँ बहती हैं। मैंने अपना अधिकांश जीवन एक ऐसे ही अंचल में बिताया है, जिसमें जल का प्राचुर्य है और जहाँ प्रतिवर्ष सैकड़ों गाँव बाढ़ में डूब जाते हैं और हजारों लोग बह जाते हैं। अतः मेरा स्वर्ग ऐसा नहीं होगा, जिसमें उद्यानों से होकर नदियाँ बहती हों। मुझे तो ऐसा स्वर्ग चाहिये, जिसमें वर्षा कम होती हो।

हमारी सुख की धारणा हमेशा बदलती रहती है। यदि कोई युवक स्वर्ग की कल्पना करे, तो उसके स्वर्ग में एक सुन्दर पत्नी अवश्य होगी। फिर वही व्यक्ति जब वृद्ध हो जाता है, तो स्त्री की जरूरत नहीं रहती। हमारी आवश्यकताएँ ही हमारे स्वर्ग का निर्माण करती हैं और आवश्यकताओं में परिवर्तन के साथ-साथ स्वर्ग-विषयक हमारी धारणा भी बदलती जाती है। (वि.सा. २/१६९)

४२. भ्रान्ति से भ्रान्ति को दूर करना

मुसलमान और हिन्दू लोमड़ी को बड़ा अपवित्र मानते हैं। कुत्ता भी यदि भोजन छू दे, तो फिर उसे कोई व्यक्ति नहीं खाता, उसे फेंक देना पड़ता है।

किसी मुसलमान के घर में एक लोमड़ी घुसी, मेज पर से थोड़ा-सा कुछ लेकर खायी और भाग गयी। वह व्यक्ति बड़ा गरीब था। उस दिन उसने अपने लिए बड़ा ही उत्तम भोजन बनाया था, वह सब-का-सब लोमड़ी के छूने से अपवित्र और उसके लिये अखाद्य हो गया था। इसलिये वह मुल्ला के पास जाकर बोला, "मेरे साथ एक दुर्घटना हो गयी है। मेरे घर में एक लोमड़ी आयी और मेरे भोजन में से थोड़ा-सा खाकर चली गयी है। अब क्या किया जाय? मैंने अपने लिये भोज की व्यवस्था की थी और खाने के लिये बड़ा इच्छुक था, परन्तु लोमड़ी ने आकर सब गुड़-गोबर कर दिया।"

मुल्ला ने क्षण भर सोचा और समस्या का हल ढूढ़ निकाला। वह बोला, "इसका एकमात्र समाधान यह है कि तुम कहीं से एक कुत्ता ले आओ, फिर जिस थाली को लोमड़ी जूठा कर गयी है, उसी में से उसे थोड़ा-सा खिलाओ। कुत्ते और लोमड़ी सदा आपस में लड़ते रहते हैं। जब तुम्हारे पेट में लोमड़ी की जूठन जायेगी और कुत्ते की जूठन भी जायेगी, तो दोनों मिलकर भोजन को शुद्ध कर देंगे।"

हम लोग भी बहुधा ऐसी ही समस्या में पड़े रहते हैं। भ्रान्ति के कारण हम अपने को अपूर्ण समझते हैं; और पूर्णता की प्राप्ति करने के लिए एक दूसरी भ्रान्ति का अभ्यास करने लगते हैं। जैसे हम एक काँटे की सहायता से दूसरे काँटे को निकालते हैं और फिर दोनों काँटों को फेंक देते हैं, वैसे ही एक भ्रान्ति दूसरी भ्रान्ति को मिटा देती है। (८/७७-७८)

नवम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

१	छत्तीसगढ़ राज्योत्सव
४	स्वामी सुबोधानन्द
५	स्वामी विज्ञानानन्द
६	गुरु नानक
१९	मोहर्रम
३०	स्वामी प्रेमानन्द
३,१८	एकादशी

मेरे जीवन में श्रीमाँ की कृपा

विभूतिभूषण घोष

१९४४ ई. के नवम्बर में प्रकाशित लेखक के 'श्रीमाँ' नामक पुस्तक के प्रथम तीन अध्याय हम २००६ के अंकों में प्रकाशित कर चुके हैं। बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' के खण्ड २ से इस अंश का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। इसका सम्पादन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

बेलूड़ मठ में प्रथम आगमन

१९०७ ई. में मेरा प्रथम बार बेलूड़ मठ में श्रीरामकृष्ण का जन्म-महोत्सव देखने जाना हुआ। उसके बाद विवेकानन्द सोसाइटी में स्वामीजी के शिष्य शरत्चन्द्र चक्रवर्ती को 'बांगालेर वाक्यधर' कविता पाठ करते सुना। श्रीरामकृष्ण के विषय में उन्होंने कहा, "श्रीरामचन्द्र में जिस शक्ति का प्रकाश था, श्रीकृष्ण में उसका सोलह आना हुआ और वही शक्ति श्रीरामकृष्ण में बीस आने प्रगट हुई।" (तब मैं कॉलेज का छात्र था) सुनकर मैंने कहा, "यह क्या कहते हैं महाशय? **'कृष्णास्तु भगवान् स्वयम्'** – श्रीकृष्ण तो साक्षात् भगवान थे।" मेरी बात सुनकर वे नाराजगी के साथ बोले, "तेरी क्या बिसात जो मेरे साथ तर्क करे!" सब सुनकर डॉक्टर ज्ञानेन्द्रनाथ कांजीलाल मेरे पास आकर बैठे और अपने घर ले जाकर मुझे खाना खिलाया। बाद में वे मुझे ठाकुर के भक्त गिरीशचन्द्र घोष के पास ले गये।

डॉक्टर बाबू मुझे बेलूड़ मठ भी ले गये। उस समय प्राय: संध्या हो चुकी थी। वे मुझे श्रीमत् स्वामी ब्रह्मानन्द जी के पास ले गये और वहाँ से थोड़ी देर बाद ज्ञान महाराज के कमरे में ले गये। ज्ञान महाराज मुझे देखते ही बोल उठे, "एक बार गोशाले में जाओ तो नागरी गाय के खाने की नाँद से बड़ी दुर्गन्ध आ रही है, उसे साफ कर दो।" मैं गोशाले में गया और एक बाल्टी पानी लेकर सफाई करने के बाद लौटकर (अपने हाथ सूँघते हुए) महाराज से बोला, "हाँ महाराज, बहुत दुर्गन्ध आ रही थी।"

इसके बाद (१९०७) लॉ कॉलेज में पढ़ने लगा। शाम को कॉलेज के क्लास समाप्त हो जाने के बाद प्राय: ही मठ चला जाता। गुप्त महाराज (स्वामी सदानन्द) के पास रहता, उन्हीं के कमरे में सोता। कुछ दिनों बाद विष्णुपुर के बोशी सेन, गुरुदास और अमूल्य मेरे साथ उनके पास गये।

माँ सारदादेवी का प्रथम दर्शन

हाल ही में विधवा हुई मेरी बहन प्रमिला बसु ने अपने ससुराल कोआलपाड़ा गाँव से एक पत्र के द्वारा अपनी बीमारी की सूचना दी थी। पत्र पाकर मैं खूब सबेरे उसके घर जा पहुँचा। उसका कुशल संवाद लेने के बाद जयरामबाटी जाने का रास्ता पूछकर मैं तत्काल शिरोमणिपुर, शिहड़ होते हुए जयरामबाटी के लिये रवाना हुआ। इससे पहले मैंने माँ का दर्शन नहीं किया था। जाते समय शिहड़ गाँव में रास्ते के किनारे एक हलवाई की पत्नी अपनी मिठाई की दुकान गोबर से लीपने के बाद उड़द की दाल पीसकर उसे फेंट रही थी। मैंने पूछा – क्या जलेबी बन सकेगी? थोड़ी ही देर में उसके पति ने जलेबी बनाकर पाँच रुपये की जलेबी एक टोकरी में दे दी। जलेबी लेकर मैं माँ के पास पहुँचा।

१९०९ ई. के १५ नवम्बर को सुबह साढ़े नौ बजे जयरामबाटी में बड़े मामा के सदर दरवाजे के सामने के आंगन में मैंने पहली बार माँ का दर्शन किया। उसी समय देखा कि चश्मा पहने एक वृद्धा आंगन के पश्चिमी किनारे पर खड़ी हैं। (वे भानु बुआ थीं) मुझे देखकर बोली, "माँ स्नान करने गयी हैं। थोड़ा रुको, माँ अभी आ जायेंगी।" मैं पूर्व की ओर मुख करके खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद ही माँ मुख्य दरवाजा पार करके घर में प्रवेश कीं। माँ के दाहिने हाथ में उनका वही (चपटे पेंदेवाला) जर्मन सिल्वर का पानी भरा लोटा और बायें हाथ में निचोड़े हुए गीले वस्त्र थे। वे हम दोनों के बीच से होकर निकलीं। भानु बुआ बोलीं – "माँ देखो तो, कैसा एक लड़का आया है।" माँ ने बाँयी ओर मुड़कर मुझे देखा और बोली, "तुम्हारा क्या पचीसवाँ वर्ष पूरा हो गया है?" मैंने कहा "हाँ, माँ।" माँ के पीछे-पीछे जाकर उनके हाथ में जलेबी की टोकरी दिया।

दोपहर में पश्चिमी दरवाजे वाले कमरे (के खुले बरामदे) में एक बड़े शाल के पत्तल पर बहुत-सा भात, उसके ऊपर तुलसीपत्र, बगल में तरकारी और कटोरे में पानी रखकर मुझे खाने को दिया। आठ बिल्लियाँ मेरे सामने तथा दोनों ओर अर्थात् तीनों तरफ बैठीं। मैं खाना खाता गया और थोड़ा थोड़ा बिल्लियों को देता गया। कमरे से निकलकर रसोईघर की ओर जाते समय माँ ने मुझे देखा। मैंने खाया, तालाब के

घाट पर हाथ धोने गया, उधर ही पत्तल को फेंका। घाट के पश्चिमी ओर एक जामुन का पेड़ था। घाट के किनारे से एक लता जामुन के पेड़ पर चढ़ गयी थी। तालाब का पानी घट चुका था, देखा, एक बड़ी जड़ निकलकर लटक रही है। जड़ मानो जल का स्पर्श करने के लिये व्यग्र थी। लौटकर मैंने माँ को लता के बारे में बताया। सुनकर माँ बोलीं, "तुमने देखा है?" मैंने कहा, "हाँ माँ।" बाद में बोली, "तुमसे और क्या कहूँ? तुम तो सब जानते हो।"

विभूति बाबू के पढ़ाई के बारे में माँ का प्रश्न

माँ ने मुझसे पूछा, "क्या परीक्षा पास करने के लिये बहुत पढ़ाई किया था? मैं बोला, "माँ, कब पढ़ता? पिता की मृत्यु हो गयी थी, परीक्षा के पहले किताबों के पन्ने उलटते-उलटते जहाँ जो निकल गया, वही पढ़कर परीक्षा दे दी।" माँ – "फिर भी ठाकुर ने तुम्हें पास करा दिया है।"

एक अन्य दिन की घटना

एक दिन मधुर की माँ ने कहा, "विभूति, तुमने ठाकुर को देखा है?"

माँ – "उस समय मेरा विभूति पैदा हो चुका था।"

विभूति की दीक्षा (अक्षय तृतीया १९१२ ई.)

खोका महाराज – "माँ, लड़के को कुछ दीजिए।"

माँ – "तुम लोग दो।"

– "आपके रहते हम लोग?"

– "अच्छा उसे बुला लाओ।"

१९१२ ई. की अक्षय-तृतीया तिथि। सुबह नदी में स्नान करके आकर माँ के कमरे के (खुले बरामदे में) खड़े होते ही माँ ने कहा, "बैठो, तुम्हें मंत्र दूँगी।" (आसन बिछा था) मैं बैठ गया। माँ ने अपनी अंगुली से मेरे दाहिने हाथ की अंगुलियों के दूसरे पोर से शुरू करके दो बार जप कर दिया। मैंने भी किया। (ठाकुर का चित्र दिखाते हुए) मुझसे बोलीं, "ठाकुर ही तुम्हारे गुरु हैं। उनका ध्यान करना।" मैंने वैसा ही किया। मैंने देखा नहीं कि वे कब उठकर भण्डार-कक्ष की ओर चली गयीं। माँ सामने के कमरे के भीतर से आकर बोलीं, "तुम्हें दुबारा मंत्र दूँगी।" उन्होंने पहले के समान ही पुन: जप कर दिया। मैंने कहा, "माँ, इतना सब नहीं कर सकूँगा।" माँ बोलीं, "जितना हो सके, करना। मैं ठाकुर से कह दूँगी। तुमसे और अधिक क्या कहूँ? बेटा, तुम तो सब जानते हो। तुम बाबूराम से कहना। क्या मैं कुछ करती हूँ? ठाकुर ही सब करते हैं।" **(क्रमशः)**

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर, नागपुर

२७४. नर हो न निराश करो मन को

एक बार लोकसभा में किसी विषय पर पक्ष और विपक्ष में बहस हुई और दोनों अपनी-अपनी बात पर अड़े रहे। जब विवाद ने उग्ररूप धारण किया तो सभापति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने उन्हें शान्त करने का काफी प्रयास किया, किन्तु कोई भी सुनने को तैयार न था। जब उन्होंने कड़ा रूख अपनाया तो सभा शान्त रह गई। इस घटना से वे इतने क्षुब्ध हुए कि उन्होंने इस पद से त्याग-पत्र देने का निश्चय किया। किन्तु उन्होंने गाँधी जी की सलाह लेना उचित समझा और उनके पास जाकर उन्होंने सारा हाल सुनाया और त्याग-पत्र देने की बात बताई, तो गाँधीजी ने कहा, 'मनुष्य के जीवन में ऐसे क्षण आते ही रहते हैं, जब हमारा मन उद्विग्न हो जाता है, मनोबल क्षीण हो जाता है और हम हतोत्साह हो जाते हैं। ऐसे समय हताश होकर पीछे हटना किसी भी दशा में उचित नहीं। गाँधीजी ने आगे कहा, 'आप एक उच्च पद पर आसीन हैं। आप जैसे कार्य-कुशल, नीतिवान एवं एकनिष्ठ व्यक्ति के लिये त्याग-पत्र देने का विचार करना पलायन करने के समान है। कठिन से कठिन परिस्थिति में मनुष्य को हताश न होकर उसका सामना करना चाहिए। कर्त्तव्य का पथ कंटकाकीर्ण होता है। सारी बाधाओं को दूर कर आगे बढ़ने में ही बुद्धिमानी है। अपने पुरुषार्थ को जगाइए और सही निर्णय लीजिए, किन्तु पथ से विमुख न होइए।" बापू के इन ओज भरे विचारों ने राजेन्द्र प्रसाद जी के मन में व्याप्त निराशा को दूर कर दिया। उन्होंने त्याग-पत्र देने का विचार त्याग दिया। ○○○

समय व्यर्थ मत गँवाओ। लक्ष्य-प्राप्ति के लिए हर घड़ी संघर्ष करते रहो और आगे बढ़ते चलो। लोग अपने रुपयों-पैसों का तो हिसाब रखते हैं, पर ऐसे कितने लोग हैं, जो व्यर्थ में नष्ट किये गये अपने मूल्यवान समय का हिसाब रखते हैं?

– स्वामी प्रेमानन्द (श्रीरामकृष्ण के शिष्य)

तुम जो चाहो हो सकते हो

स्वामी सत्यरूपानन्द,
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने सन्त गजानन अभियान्त्रिकी महाविद्यालय, शेगाँव में दिया था। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु उस लोकप्रिय व्याख्यान का हिन्दी अनुवाद रायपुर की श्रीमती शुभदा ठाकुर और कुमारी प्रतिष्ठा ठाकुर ने किया है।- सं.)

प्रत्येक युवा लड़का या लड़की के मन में पहले या बाद में यह बात कभी-न-कभी जरूरी आती है कि कैसे अपने व्यक्तित्व को संघटित करें, सम्पूर्ण करें और अपने चरित्र का निर्माण करें। लेकिन दुर्भाग्यवश कुछ ही व्यक्ति इस प्रश्न को गम्भीरता से लेते हैं और उनमें से कुछ ही दृढ़तापूर्वक अपने चरित्र और व्यक्तित्व को सम्पूर्ण संघटित बनाने के लिये प्रयत्न करते हैं। प्रारम्भ में ही युवाओं को इस विचार से अवगत कराना आवश्यक है कि जब तक वे चरित्र के निर्माण और अपने व्यक्तित्व के एकीकरण के लिए दृढ़ संकल्प और गम्भीरतापूर्वक संघर्ष नहीं करते, तब तक चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व के विकास का रहस्य वे नहीं जान पायेंगे।

मनुष्य एक बहुआयामी प्राणी है। लेकिन सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिये मानव व्यक्तित्व को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं – १. बाहरी व्यक्तित्व और २. आन्तरिक व्यक्तित्व।

बाहरी व्यक्तित्व

जब हम एक बड़े दर्पण के सामने खड़े होते हैं, तब हम अपने प्रतिबिम्ब को देख पाते हैं। हम अपनी उस छवि को, शरीर के उस भाग को देख पाते हैं, जो दर्पण के सामने ढँका नहीं रहता है, जैसे अपना चेहरा, अपने हाथ-पैर आदि। क्या यही हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व होता है? निश्चित रूप से नहीं। दर्पण में अपने शारीरिक प्रतिबिम्ब को निहारते समय यदि हम अपने किसी घनिष्ठ मित्र के बारे में सोच रहे हों और उससे मिलने उसके घर जाना चाहते हैं, तो क्या हम अपनी सोच को उस दर्पण में देख सकते हैं? निश्चित रूप से नहीं। परन्तु क्या हम कह सकते हैं कि चूँकि हम अपने विचारों या व्यक्तित्व को दर्पण में नहीं देखते हैं, इसलिये ये नहीं हैं? विचार हमारे व्यक्तित्व के लिये बहुत महत्वपूर्ण और बड़े हिस्से होते हैं। वास्तव में विचार हमारे व्यक्तित्व को सँवार या बिगाड़ सकते हैं।

मन

हममें से सभी जानते हैं कि हमारे पास मन है, जिसका हम अधिकतम समय उपयोग करते हैं। परन्तु यह कोई नहीं जानता कि वास्तव में मन क्या है? मन का स्वभाव, उसकी कार्यशैली और कार्य करने की पद्धति, उसकी गतिशीलता एवं सफलता प्राप्त करने के लिये उसका उपयोग अथवा जिसे हम नापसन्द करते हैं, उसे नष्ट करने के लिये मन का उपयोग विषय पर दार्शनिकों और मनोवैज्ञानिकों ने कई ग्रन्थ लिखे हैं।

इस लेख में हम दार्शनिकों तथा मनोवैज्ञानिकों के अलग-अलग विचारों और प्रस्तावों पर चर्चा नहीं करेंगे। यहाँ हम मन के उस पहलू पर विचार करेंगे, जो हमारे दैनिक जीवन में हमारे चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व विकास में सहायक हैं।

आइये, अपने सभी व्यावहारिक कार्यों के लिये हम इस बात को मान लें कि विचार ही मन है। केवल अपने विचारों के माध्यम से ही हम अपने मन को विचारों के साथ एकाकार कर सकते हैं। हम अपने विचारों को मन से या मन को विचारों से अलग नहीं कर सकते।

अपने विचारों का विश्लेषण करें

ईश्वर ने मानव को एक विशेष और अलौकिक शक्ति दी है। हालाँकि विचार दूसरों के लिये और स्वयं के लिये भी अदृश्य होते हैं, पर ईश्वर ने मनुष्य को विशेष शक्ति दी है, जिससे वह अपने मन की आँखों से अपने विचारों को देख सकता है। मनुष्य न केवल अपने विचारों को देख सकता है, बल्कि एक विचार को दूसरे से अलग भी कर सकता है।

आत्म-निरीक्षण

स्वयं के विचारों का आकलन व परीक्षण ही आत्म-निरीक्षण कहलाता है। मानव-मन की यह एक विलक्षण विशेषता है कि उसके मन का एक भाग स्वयं दूसरे से अलग होकर, अपने मन से अलग खड़ा होकर अपने मन के सभी क्रिया-कलापों का निरीक्षण कर सकता है। इसे ही

आत्म-निरीक्षण कहते हैं।

आत्म-निरीक्षण के द्वारा मनुष्य अपने अच्छे और बुरे विचारों को पहचान पाता है। आत्म-निरीक्षण के द्वारा हम अपने अच्छे तथा बुरे विचारों को जान पाते हैं और बुरे विचारों को त्याग करने में जुट जाते हैं और अच्छे विचारों का पोषण करने लगते हैं। उसी क्षण से हमारे चरित्र के निर्माण और व्यक्तित्व के विश्लेषण की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। मन ही आन्तरिक और बाहरी परिस्थितियों का निर्माणकर्ता है। विचारों के द्वारा ही किसी मनुष्य के चरित्र का निर्माण एवं व्यक्तित्व का विकास होता है। इसलिये अपने मन के शत्रु या मित्र को पहचानना, हमारे व्यक्तित्व के विश्लेषण एवं चरित्र-निर्माण की दिशा में पहला कदम होगा। वे विचार जो हमारे मन को नियंत्रित करने और उत्तम चरित्र-निर्माण, सर्वांगीण व्यक्तित्व-विकास की लक्ष्य-प्राप्ति में सहायक हैं, वे हमारे मित्र हैं तथा जो हमारी प्रगति में बाधा उत्पन्न करें, वे हमारे शत्रु हैं।

वैश्विक मन

हमारे शास्त्रों और संत-महात्माओं ने हमें यह बताया है कि एक वैश्विक मन है। हमारा मन उस विराट मन का एक सूक्ष्म अंश है। विराट मन परमात्मा है और उसके पास अपार ज्ञान एवं शक्ति है। हमारे संत-महात्माओं ने हमें बताया है कि साधना के द्वारा एक योग्य गुरु के मार्गदर्शन में सही सामंजस्य के द्वारा हम विराट मन से सम्पर्क कर सकते हैं। इस सम्पर्क की पहली शर्त एक शुद्ध एवं नैतिक जीवन जीना तथा अपने छोटे से मन को शुद्ध रखने की कोशिश करना है। केवल शुद्ध मन के माध्यम से ही विराट मन से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

मन की अशुद्धतायें क्या हैं? इन्द्रियों की गुलामी ही मन की सबसे बड़ी अशुद्धता है। जैसे आत्म-नियंत्रण की कमी। जब इन्द्रियाँ व्यक्ति के नियंत्रण में नहीं रहतीं, जब वे उसे इन्द्रिय-सुखों की ओर खींचती हैं, तब वह इन्द्रियों के वश में हो जाता है। काम, क्रोध, लोभ, अनियंत्रित क्षोभ, आवेश उसके जीवन में अधिकार जमा लेते हैं और उसे अनैतिक व्यक्ति बनाते हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि एक अनैतिक व्यक्ति कभी भी अपने चरित्र का निर्माण नहीं कर सकता है और न ही अपने व्यक्तित्व का संघटन।

इसलिये चरित्रवान बनने के लिये पहली और आवश्यक शर्त है कि हम इन्द्रियों की गुलामी करानेवाले विचारों से दूर रहें। न केवल बुरे विचारों बल्कि हमें बुरे व्यक्तियों से भी दूर रहना चाहिए, जो हमें कामुक एवं अनैतिक जीवन जीने के लिये प्रेरित करते हैं। इस तरह के व्यक्ति नैतिक जीवन तथा उच्च चरित्र-निर्माण के लिये बहुत बड़ा खतरा और बहुत बड़े शत्रु होते हैं।

अच्छी संगति में रहना

अच्छी संगति करने से चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व संघटन करने में बड़ी सहायता मिलती है। हमारे संत-महात्माओं ने बताया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के द्वारा अच्छे और बुरे विचारों का विकिरण करता है, संचार करता है, जो उनकी सीमा में आने वाले व्यक्ति को प्रभावित करता है। बुरे और दु:श्चरित्र व्यक्ति के साथ अधिक और लम्बे समय तक सम्पर्क में रहनेवाले व्यक्ति का चरित्र और विचार भी प्रभावित होकर दूषित हो जाते हैं। उसी प्रकार अच्छे और उत्तम चरित्रवाले व्यक्ति के द्वारा भी अच्छे तथा उच्च विचारों का संचार होता है।

जब हम इस प्रकार के उच्च चरित्रवान व्यक्ति के सान्निध्य में लगातार और लम्बे समय तक आते हैं, तो हमारे मन से बुरे और अवांछनीय विचार नष्ट होते जाते हैं और हमारा मन बदल जाता है।

न केवल हमारे मन के कमजोर हो चुके उच्च और नैतिक विचार मजबूत होते हैं, बल्कि धीरे-धीरे हमारे उच्च चरित्र व नैतिक विचारों का निर्माण भी होने लगता है।

यह विश्लेषण हमें बताता है कि चरित्र और आदत का निर्माण केवल एक संयोग की बात नहीं है, यह एक व्यक्ति का अपने आप पर नियंत्रण है कि वह बुरी आदतों का त्याग करे और अच्छी आदतों और नैतिकता को बढ़ावा दे। एक व्यक्ति इसे तभी प्राप्त कर सकता है, जब वह दृढ़ता से बिना रुके अपने लक्ष्य-प्राप्ति की ओर लगा रहे।

इच्छा शक्ति

स्वामी विवेकानन्दजी ने अपने कर्मयोग के व्याख्यान में कहा है – "संसार में हम जो सब कार्य-कलाप देखते हैं, हमारे चारों ओर जो कुछ हो रहा है, वह सब मन की ही अभिव्यक्ति है – मनुष्य की इच्छाशक्ति का ही प्रकाश है। कलें, यन्त्र, नगर, जहाज, युद्धपोत आदि सभी मनुष्य की

इच्छाशक्ति के विकास मात्र हैं।"[१] मानवीय पुरुषार्थ के सभी यथोचित उपलब्धियों में स्पष्ट रूप से मनुष्य की इच्छा ही सर्वोच्च दृष्टिगोचर होती है।

आइये, हम मानव-मन के नियमों और क्रियाओं को समझने का प्रयत्न करें। मानव-मन के नियमों और क्रियाओं के विश्लेषण करने का सबसे सही तरीका है, मनुष्य स्वयं के मन को देखे और उसकी प्रकृति और कार्यशैली को समझने का प्रयास करे। इससे एक छोटी-सी बात उजागर होगी कि हर क्रिया के पीछे एक विचार है। विचार पहले हमारे मस्तिष्क में आता है, फिर अच्छे या बुरे कार्य के रूप में परिणत होता है। रल्फ वाल्डू ट्राइन ने अपनी प्रेरणादायी पुस्तिका "Character building thought power" में कहा है – "तुम्हारा प्रत्येक कार्य, हर जागरूक कार्य तुम्हारे विचारों के द्वारा ही प्रेरित है।[२]"

हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि विचार सभी कार्यों की जननी है। आगे चलकर हम यह पाते हैं कि हमारे सभी विचार तुरन्त कार्य में परिणत नहीं होते। प्राय: हमारे प्रभावी विचार ही कार्य में परिणत होते हैं। बार-बार दोहराए जाने वाले कार्य आदत बन जाते हैं, और हम जानते हैं कि व्यक्ति का चरित्र और कुछ नहीं बल्कि उसके सभी कार्यों का कुलयोग है।

जब हम गहराई से विश्लेषण करते हैं, तो पाते हैं कि हमारे सभी प्रभावी विचार हमारे नियंत्रण में नहीं होते। जबकि हम पाते हैं कि अधिकांश बार हमारे अनियंत्रित विचार हमें वह करने को उकसाते हैं, जो हम अपने चेतन मन से करना नहीं चाहते। परन्तु हम अपने प्रभावी विचारों द्वारा वह करने को बाध्य होते हैं, जो हमेशा किसी-न-किसी इच्छा से प्रभावित होते हैं। जरूरी नहीं कि वह इच्छा किसी व्यक्ति-विशेष या समाज के लिये लाभकारी हो। उदाहरण के लिये, धन-सम्पत्ति एकत्र करने की इच्छा को यदि हम नियंत्रित न करें, तो यह हमारे लोभ का कारण बन जाती है और हमें अनुचित तथा अनैतिक तरीकों से धन-सम्पत्ति अर्जित करने को बाध्य करती है। इन्द्रियों को संतुष्ट करने की यह अनियंत्रित इच्छा ही मनुष्य को विलासी और पशुवत बना देती है और उसके चरित्र को पूरी तरह से भ्रष्ट कर देती है। यहाँ मनुष्य की इच्छा-शक्ति की भूमिका आती है। सामान्यत: मनुष्य परमात्मा है, परन्तु उसकी दिव्यता सुप्त, बल्कि मृतप्राय होती है। लेकिन मनुष्य की दिव्यता पूरी तरह से समाप्त नहीं होती। उसे हमेशा के लिये समाप्त नहीं किया जा सकता। यह सुप्त और मृतप्राय रहती है, परन्तु उसकी एक हार्दिक इच्छा होती है कि वह मनुष्य में पूर्ण रूप से जागृत और प्रकट हो सके।

पूर्णता व्यक्ति में निहित होती है। यदि हम मानव के स्वभाव का निरीक्षण करें, तो पायेंगे कि प्रत्येक स्वस्थ और समझदार व्यक्ति अपने-अपने कार्यक्षेत्र में पूर्ण और श्रेष्ठ बनना चाहता है। कोई भी अपूर्ण या निकृष्ट रहना नहीं चाहता। यह मानव के स्वभाव में निहित इच्छाओं की पूर्णता और श्रेष्ठता को दर्शाता है। यह और कुछ नहीं, बल्कि जीवन के विभिन्न पहलुओं द्वारा मानव-मन की श्रेष्ठता की अभिव्यक्ति को दर्शाता है।

जब तक मनुष्य बाहरी जगत में अपनी पूर्णता की अनुभूति की इच्छा रखेगा, तब तक वह कभी भी पूर्ण रूप से संतुष्टि और पूर्णता की अनुभूति नहीं कर सकेगा। क्योंकि मानव जीवन में किसी भी क्षेत्र में प्राप्त श्रेष्ठ उपलब्धियाँ भी उसे याद दिलाती हैं कि असंख्य ऐसी उपलब्धियाँ भी हैं, जिसमें उसे पूर्णता प्राप्त नहीं हुयी। यही अनुभव उसे पुन: दुखी और असंतुष्ट बना देता है।

विश्व के सभी धर्मों के शास्त्र, सभी महान ऋषि-मुनि भी हमें यही कहते हैं जब तक व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा की गहराई में डूबकी लगाकर अपनी आत्मा का अनुभव नहीं कर लेता, तब तक उसे शाश्वत संतुष्टि और पूर्णता नहीं मिल सकती।

आत्म–नियंत्रण

हमें नित्य स्थायी पूर्णता और सुख की अवस्था का अनुभव करने के लिये कठिन परिश्रम करना होगा। सर्वप्रथम तो हमें यह समझना और अनुभव करना होगा कि संसार में किसी भी प्रकार की उपलब्धि हमें नित्य स्थायी सुख और शान्ति नहीं दे सकती। इसलिये हमें अपनी सभी आकांक्षाओं और इच्छाओं को पहचानना और उनका विश्लेषण करना होगा, साथ ही उनके स्वभाव को भी पहचानना होगा कि वे इच्छायें केवल सांसारिक उपलब्धियाँ पाने के लिये हैं या नहीं। उदाहरण के लिये, धन-संपत्ति, शक्ति, नाम, यश आदि। यदि वे हैं, तो हमें उनका त्याग करना होगा और इच्छारहित पूर्णत: शाश्वत आनन्द में प्रतिष्ठित अपने स्वरूप को जानने की आकांक्षा उत्पन्न करनी होगी।

इस मानसिक अवस्था को समझने या अनुभव करने के लिये हमें अपने आपको पूर्ण रूप से प्रशिक्षित करना होगा। इस प्रशिक्षण का अर्थ है विवेक और आत्म-नियंत्रण का अभ्यास करना। सर्वप्रथम हमारे मनश्चक्षुओं के सामने यह विचार दृढ़ होना चाहिये कि हम इसी जीवन में इस पूर्णता और आनन्द की अवस्था की अनुभूति प्राप्त कर लेंगे। हमें इस ज्वलन्त लक्ष्य को दिन-रात अपने मनश्चक्षुओं के सामने रखना चाहिये।

इस आदर्श को प्राप्त करने के लिये हमें अपने स्वभाव पर पूर्ण नियंत्रण करना चाहिये और उसे सुव्यस्थित करना चाहिये। अर्थात् हमें अपने पूरे शरीर और मन का नियंत्रण करना चाहिये। अनियंत्रित शरीर तथा मन हमें उस शाश्वत पूर्णता और आनन्द के आदर्श से दूर ले जाते हैं।

नियन्त्रित शरीर और मन का यह आदर्श अचानक नहीं हो जाता। इसके लिये दीर्घकाल तक निरन्तर धैर्य और पुरुषार्थ की आवश्यकता है। दिन-रात हमें अपने मन की उन इच्छाओं और अनुभवों का एक-एक करके त्याग करते जाना चाहिये, जो हमें अपने आत्मनियंत्रण और आत्मसंयम के आदर्श से विचलित करते हैं।

इसके लिये निरन्तर सावधानी और विवेक की आवश्यकता होती है। जैसे ही हमें यह पता चले कि कुछ बुरी इच्छायें हममें अंकुरित हो रही हैं, तो हमें तुरन्त उन्हें प्रारम्भ में ही अपने मन से निकाल देना चाहिये। क्योंकि प्रारम्भ में ही अवांछित इच्छाओं को दूर कर देना आसान होता है। इनकी उपेक्षा करने से मन में इनकी जड़ों को फैलने का अवसर मिलता है। ❖(क्रमशः)❖

सन्दर्भ –

---

१. विवकानन्द साहित्य, खण्ड ३, पृष्ठ - ५

२. (Page no. 2 Newyork Thomas Y Crowell & Company, Pub. Reprinted 1976 by health research, P.O. 850, Pomenoy, WA 9934)

इस जीवन में जो सर्वदा निराश रहते हैं, उनसे कोई भी कार्य नहीं हो सकता। वे जन्म-जन्मान्तर में 'हाय-हाय करते हुए आते हैं और चले जाते हैं। 'वीरभोग्या वसुन्धरा' अर्थात् वीर लोग ही वसुन्धरा का भोग करते हैं – यह वचन नितान्त सत्य है। वीर बनो।

– स्वामी विवेकानन्द

विवेक-चूडामणि

श्री शंकराचार्य

अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानन्द

भानुनेव जगत्सर्वं भासते यस्य तेजसा।
अनात्मकमसत्तुच्छं किं नु तस्यावभासकम्॥५३३॥

अन्वय – भानुना इव यस्य तेजसा सर्वं जगत् अनात्मकम्, असत्, तुच्छं भासते, तस्य नु किम् अवभासकम्?

अर्थ – जैसे सूर्य के तेज से सारा जगत् प्रकाशित होता है; वैसे ही जिसके तेज से यह अनात्मक, असत्, मिथ्या, तुच्छ जगत् प्रकाशित हो रहा है, उस (ब्रह्म) का भला कौन प्रकाशक हो सकता है?

वेदशास्त्रपुराणानि भूतानि सकलान्यपि।
येनार्थवन्ति तं किन्नु विज्ञातारं प्रकाशयेत्॥५३४॥

अन्वय – वेद-शास्त्र-पुराणानि भूतानि सकलानि अपि येन अर्थवन्ति तं विज्ञातारं किं नु प्रकाशयेत्?

अर्थ – सारे वेद, शास्त्र तथा पुराण और सारे पंच महाभूत जिसके द्वारा अर्थवान होते हैं, उस विज्ञाता (ब्रह्म) को भला कौन प्रकाशित करेगा?

एष स्वयंज्योतिरनन्तशक्ति-
रात्माऽप्रमेयः सकलानुभूतिः।
यमेव विज्ञाय विमुक्तबन्धो
जयत्ययं ब्रह्मविदुत्तमोत्तमः॥५३५॥

अन्वय – एषः स्वयंज्योतिः अनन्तशक्तिः अप्रमेयः सकलानुभूतिः आत्मा, यं एव विज्ञाय विमुक्तबन्धः अयं ब्रह्मविद्-उत्तमोत्तमः जयति।

अर्थ – यह आत्मा स्वयंज्योति, अनन्त शक्तिमान, अप्रमेय (प्रत्यक्ष, अनुमान आदि सभी ज्ञान के साधनों द्वारा अगम्य) और समस्त अनुभूतियों का स्वरूप है। केवल उसी को जानकर सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञ पुरुष भव-बन्धन से पूर्णतः मुक्त होकर सब कुछ पर विजय प्राप्त कर लेता है।

न खिद्यते नो विषयैः प्रमोदते
न सज्जते नापि विरज्यते च।
स्वस्मिन्सदा क्रीडति नन्दति स्वयं
निरन्तरानन्दरसेन तृप्तः॥५३६॥

अन्वय – न खिद्यते, नो विषयैः प्रमोदते, न सज्जते, न च अपि विरज्यते। निरन्तर-आनन्द-रसेन तृप्तः स्वस्मिन् सदा क्रीडति स्वयं नन्दति।

अर्थ – न उसे किसी वस्तु या व्यक्ति के वियोग का खेद होता है, न वह विषयों की प्राप्ति से हर्षित होता है, न किसी से आसक्ति रखता है और न विरक्त होता है। वह निरन्तर आत्मानन्द-रस से तृप्त होकर सर्वदा आत्मा में ही क्रीड़ा करता और स्वयं में ही आनन्द प्राप्त करता रहता है।

भारतीय जीवन-दृष्टि और पुरुषार्थ-चतुष्टय (६)

डॉ. राजलक्ष्मी वर्मा
(प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

काम पुरूषार्थ का स्वरूप कुछ ऐसा है कि वह इष्ट होते हुए भी कभी कभी अनिष्ट को उत्पन्न करता है। काम मूलत: एक संवेग है, यदि इस संवेग की अभिव्यक्ति सन्तुलित है और सही दिशा में है तो उत्कर्ष का साधन है, और यदि नहीं है तो यह व्यक्ति की दुर्दशा और पतन का कारण भी बन सकता है। इसलिये काम्य कर्मों के आचरण के समय कर्त्ता को अनेक नैतिक मर्यादाओं के अनुशासन में रह कर ही इष्टसाधक यज्ञादि का अनुष्ठान करना होता था। आश्रम-व्यवस्था के अन्तर्गत गृहस्थाश्रम ही एक ऐसा आश्रम है जहाँ चारों पुरुषार्थों के साधन का अवकाश है। मोक्षरूप चरण पुरुषार्थ की तैयारी तो वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में भी हो सकती है, किन्तु अर्थ और काम पुरुषार्थों की साधना तो गृहस्थ आश्रम में ही होती है। गृहस्थ आश्रम पर अन्य तीनों आश्रमों के पोषण का महान उत्तरदायित्व होता है, अत: अर्थ और काम उसके लिये आवश्यक पुरुषार्थ होते हैं। यदि गृहस्थ व्यक्ति सन्मार्ग से च्युत हो जाय, स्वार्थी बन जाय और केवल अपना ही कल्याण करने लगे तो अन्य आश्रम या समाज के अन्य सदस्य, जो उस पर निर्भर हैं, उनका हित कौन करेगा? इसलिये जिस समय काम पुरुषार्थ परम साध्य था उस समय भी, और जब मोक्ष चरम साध्य हो गया, तब भी काम पर धर्म का अंकुश अवश्य रखा गया। धर्म प्रथम पुरुषार्थ इसलिये ही है कि वह काम और अर्थ का दिशानिर्देश करता है और व्यक्ति के समुचित लौकिक और आध्यात्मिक विकास में सहयोग कर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है। धर्म नैतिक मूल्यों और मर्यादाओं का समाहार है। उसकी नैतिक मर्यादाओं में रह कर ही अर्थ और काम कल्याणकारी होते हैं।

यदि अर्थ और काम धर्म के अनुशासन में नहीं हैं, तो वे व्यक्ति और समाज की आध्यात्मिक उन्नति में सबसे बड़ी बाधा बनते हैं। जब अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा कि किसकी प्रेरणा से व्यक्ति न चाहते हुये भी पाप में लिप्त होता है तो श्रीकृष्ण ने उसके लिये काम को ही उत्तरदायी ठहराया – "काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भव:। महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिहवैरिणम्।" अर्थात् रजोगुण से उत्पन्न होने वाला, यह कभी न तृप्त होने वाला, और अत्यन्त पापी काम ही इसके लिये उत्तरदायी है। क्रोध इसकी ही अभिव्यक्ति है। काम की जब पूर्ति नहीं होती तो वह क्रोध का रूप ले लेता है और क्रोध पाप का मूल है। श्रीकृष्ण द्वारा गीता में प्रतिपादित निष्कामता सर्वसाधारण के लिये एक कठिन आदर्श है, भले ही नैतिक दृष्टि से वह एक परिपूर्ण आदर्श हो। सांसारिक विषयों की इच्छा होना प्राणिमात्र के लिये एक सहज प्रवृत्ति है, मनुष्यों के लिये भी है; इसलिये मनु ने निषिद्ध कर्मों के आचरण का कठोरतापूर्वक निषेध करते हुये भी गृहस्थों या समाज के अधिसंख्य व्यक्तियों को व्यक्तिगत हित या इच्छापूर्ति हेतु काम्य कर्मों के अनुष्ठान की अनुमति दी है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इष्ट पदार्थों के लिये प्रयत्न करते समय भी व्यक्ति के द्वारा किसी का अहित या अनिष्ट नहीं होना चाहिये। मनु व्यक्तियों की नैतिक परिपक्वता में अन्तर करते हैं। व्यक्ति किस सीमा तक नि:स्वार्थ हो सकता है; आत्मत्याग और आत्मसंयम की क्षमता उसमें कितनी है, इस पर मनु विचार करते हैं, इसलिए वे नैतिक सामर्थ्य के श्रेष्ठ और सामान्य स्तरों को मानते हैं। मनुष्यों के स्वभाव में अन्तर को देखते हुए योगसूत्रकार पंतजलि ने भी अहिंसादि के पालन का विधान योगी के लिये अधिक कठोरतापूर्वक किया है। जैन दर्शन में भी अहिंसादि के नियमों का पालन मुनि के लिये अधिक कठोर है, गृहस्थों के लिये अपेक्षाकृत लचीला है, उदाहरणार्थ मुनियों के लिये ब्रह्मचर्य मनसा, वाचा, कर्मणा स्त्री-संग का त्याग है, जबकि गृहस्थ व्यक्ति के लिये एकस्त्रीव्रत होना ही ब्रह्मचर्य है। मुनियों के लिये अहिंसादि महाव्रत है और गृहस्थों के लिये अणुव्रत है।

काम पुरुषार्थ है और मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में उसकी उपयोगिता निर्विवाद है पर अनियंत्रित कामाचरण व्यक्ति और समाज के लिये अहितकर है, इसमें भी कोई सन्देह नहीं है, इसलिये गृहस्थों के लिये आत्मसंयम और आत्मत्यागपूर्वक कामाचरण का विधान है। ऐसे भी दैनन्दिन जीवन में कितने ही ऐसे अवसर आते हैं जब व्यक्ति अपनी सन्तान या परिवार या किसी प्रिय जन की इच्छापूर्ति के लिये अपने स्वार्थ या अपनी इच्छा का त्याग करता है। अपने हित

को पीछे कर दूसरों के हित को आगे करता है। माँ स्वयं भूखी रहकर बच्चे को खाना खिलाती है, पिता स्वयं अभावों में रहकर सन्तान की आवश्यकता पूरी करता है। जो व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक विकसित है उसकी संवेदना का विस्तार समाज और विश्व तक होता है और वह अधिकाधिक नि:स्वार्थ होता जाता है। वह जब अर्थ और काम पुरुषार्थ का अर्जन करता है तो वह समष्टि के कल्याण के लिये होता है। इस तरह प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय होता है, जो गृहस्थाश्रम का आदर्श है। प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय आत्मसंयम और आत्मत्याग के द्वारा ही सम्भव है। अपनी कामनाओं के औचित्यानौचित्य का विश्लेषण कर उन्हें समर्यादित रखना आत्मसंयम है और समाज के व्यापक हित को ध्यान में रखकर अपने निजी और सीमित स्वार्थों का त्याग करना ही आत्मत्याग है।

मोक्ष पुरुषार्थ

मोक्ष पुरुषार्थचतुष्टय में चरम मूल्य, आदर्श के रूप में स्वीकार किया गया है। यह साध्य कोटि का मूल्य है। संहिता तथा ब्राह्मकाल में काम पुरुषार्थ ही चरम मूल्य था। कालान्तर में मनीषियों ने इस विसंगति पर ध्यान दिया कि धर्म जो सबसे श्रेष्ठ मूल्य है उसे काम जो अपेक्षाकृत एक अनुदात्त मूल्य है, का साधन मानना कहाँ तक उचित है? अत: उपनिषद् काल तक आते-आते काम का स्थान मोक्ष ने ले लिया। काम यद्यपि महत्त्वपूर्ण बना रहा और धर्म के द्वारा काम की पूर्ति शास्त्र और समाज में मान्य रही, तथापि जीवन का उद्देश्य और परम लक्ष्य मोक्ष को ही स्वीकार किया गया।

प्रश्न उठता है कि चरम मूल्य (absolute value) किसे कहेंगे? इसका उत्तर है कि जिसे निरपेक्ष रूप से चाहा जाय और केवल उसी के लिए चाहा जाय, वह चरम मूल्य है। उसकी प्राप्ति के पश्चात् और कुछ प्राप्त करने के लिये शेष नहीं रह जाता, अत: उसकी प्राप्ति अन्य किसी की प्राप्ति का साधन नहीं बनती। धर्म, काम और मोक्ष दोनों का साधन होने से परम मूल्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह स्वयं पुरुषार्थरूप होता हुआ भी दो अन्य पुरुषार्थों का साधन है। ज्ञान वह दूसरा तत्त्व है जिसे चरम मूल्य माना जा सकता है किन्तु सभी ज्ञान किसी-न-किसी क्रिया में साधन बनते हैं, चाहे तत्काल बनें चाहे कालान्तर में बनें। इस प्रकार साधनभूत होने के कारण उसे चरम मूल्य नहीं माना जा सकता। यदि ऐसा कोई ज्ञान है जो स्वयं साध्यरूप है तो वैशिष्ट्यरहित होने के कारण वह परमसत्ता का स्वरूप ही है। वस्तुत: शास्त्रज्ञान या दार्शनिक ज्ञान इस परम सत्य या चरम मूल्य को जानने का साधन है और उसकी प्राप्ति में सहायक है और साधनभूत होने के कारण स्वयं में निरपेक्ष नहीं है।

संसार में दो प्रकार की जानकारियाँ होती हैं, कुछ ऐसी जो हमारे चिन्तन या जीवनपद्धति पर निर्णायक प्रभाव नहीं छोड़तीं, जैसे इस वैज्ञानिक तथ्य को जान लेना कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी उसकी परिक्रमा करती है। कुछ जानकारियाँ ऐसी हैं, जो हमारे चिन्तन और जीवनशैली को प्रभावित करती हैं, जैसे यह जानना कि आत्मा नित्य और अविनाशी है तथा मृत्यु के बाद भी उसका अस्तित्व बना रहता है। यह ज्ञान व्यक्ति के जीवन को आमूलचूल बदल सकता है। इसीलिये शास्त्र और अधिकारी विद्वानों से परम सत्ता का स्वरूप और विश्व के साथ उसका सम्बन्ध जान लेने से उसके साक्षात्कार की इच्छा दृढ़ होती है। इस प्रकार ज्ञान और धर्माचरण व्यक्ति के भीतर उस परमसत्ता के साक्षात्काररूपी चरम मूल्य की प्राप्ति की पात्रता उत्पन्न करते हैं। इस परमसत्ता का अनुभव ही वह सर्वोच्च मूल्य है जिसे 'मोक्ष' कहते हैं। इसे प्राप्त कर कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रहता। अत: यह परम साध्य रूप है।

यद्यपि विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदाय और मत मोक्ष की अवधारणा के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न दृष्टि रखते हैं, किन्तु इस विषय में सब एकमत हैं कि यह आत्मसाक्षात्कार रूप है; यह अपने स्वरूप की वास्तविक पहचान है। यह व्यक्ति का ऐसा उत्कर्ष है, जिसमें उसके स्वरूप का भौतिक पक्ष सर्वथा तिरोहित हो जाता है और उसकी आत्मा अपनी मौलिक शुद्धता में स्थित हो जाती है।

यह महत्त्वपूर्ण बात है कि यह आत्मा कोई नवीन वस्तु नहीं है जो व्यक्ति को प्राप्त होती है, यह तो व्यक्ति का स्वरूप होने से उसकी प्रत्येक क्रिया की साक्षी है, और व्यवहार-दशा में कर्त्ता और भोक्ता रूप से अनुवर्तित होती है। व्यवहारदशा में व्यक्ति इसे अपने मनोभौतिक व्यक्तित्व से अभिन्न जानता है, जो उसका वास्तविक रूप नहीं होता। मोक्षदशा में इस आत्मतत्त्व का प्रकाशन शरीरादि की उपाधि के बिना अपने शुद्ध रूप में होता है। इस तरह मोक्ष पुरुषार्थ स्व-संवेदन की विशुद्ध और परिपूर्ण स्थिति है। (क्रमश:)

श्रीरामकृष्णदेव के लीलास्थल और त्यागभूमि आँटपुर
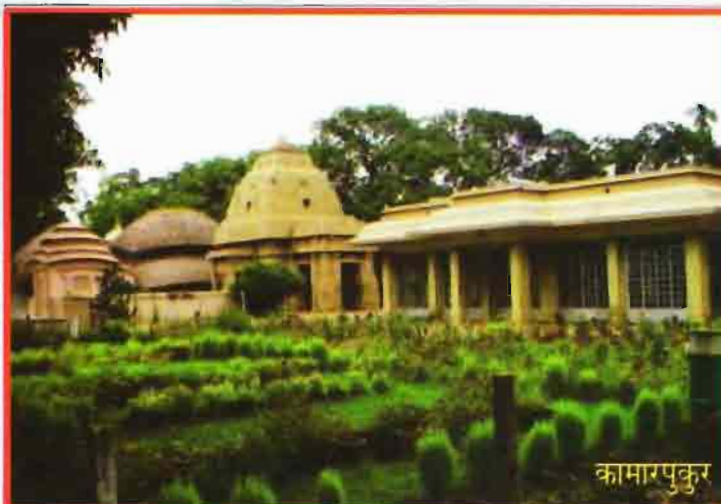
कामारपुकुर

बलराम मन्दिर

श्रीरामकृष्ण की साधनाभूमि पंचवटी

श्रीरामकृष्णदेव का चित्र ➡
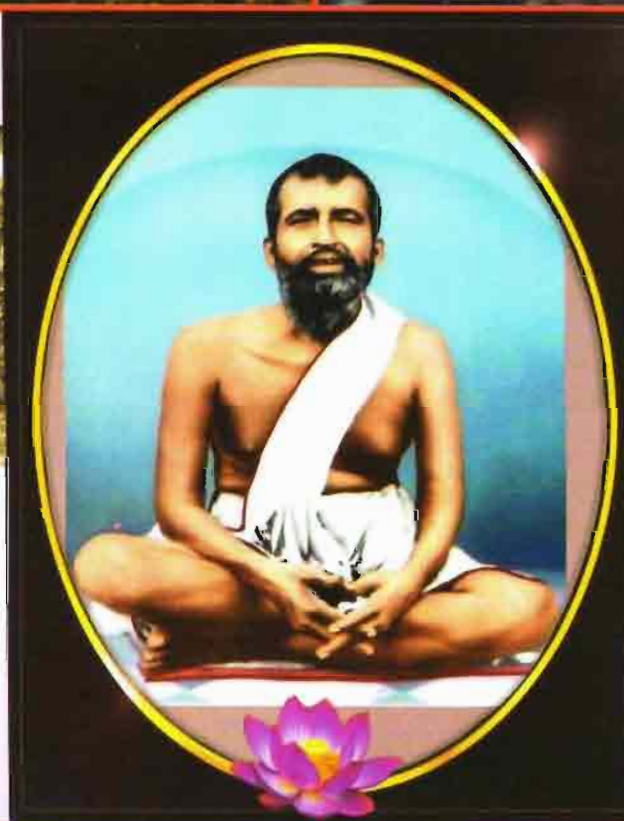
श्रीरामकृष्णदेव की हस्तलिपि

आँटपुर
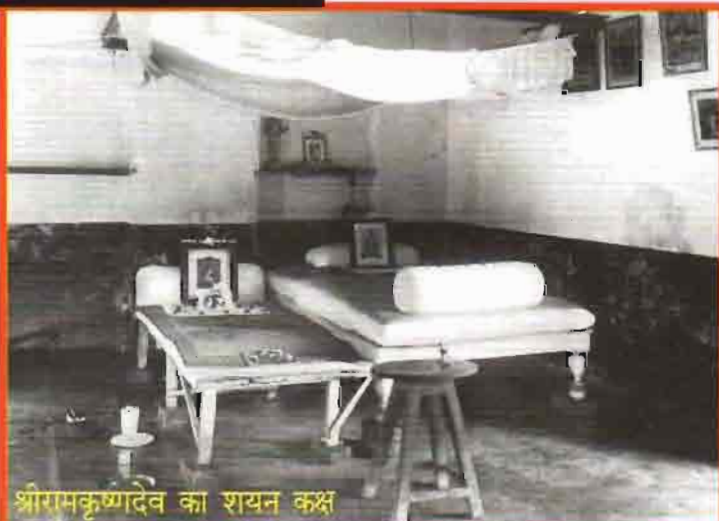
श्रीरामकृष्णदेव का शयन कक्ष

विश्वव्यापी रामकृष्ण मिशन के उत्तरप्रदेश स्थित आश्रमों के चित्र

उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत

वाराणसी विश्वनाथ मन्दिर

त्रिवेणी संगम (प्रयाग)
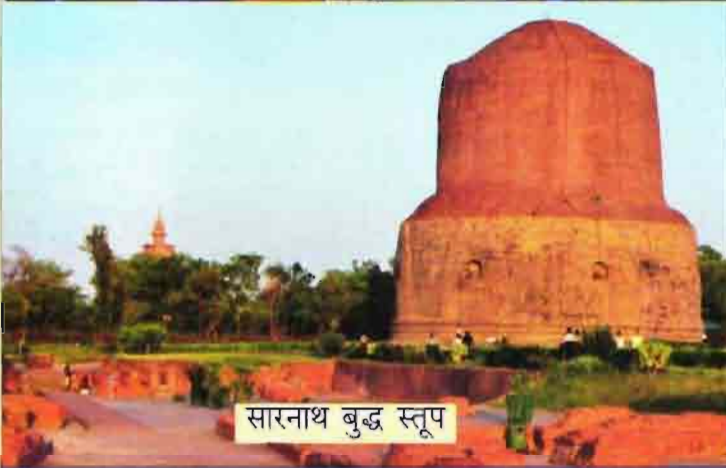
सारनाथ बुद्ध स्तूप

झाँसी महल

ताज महल
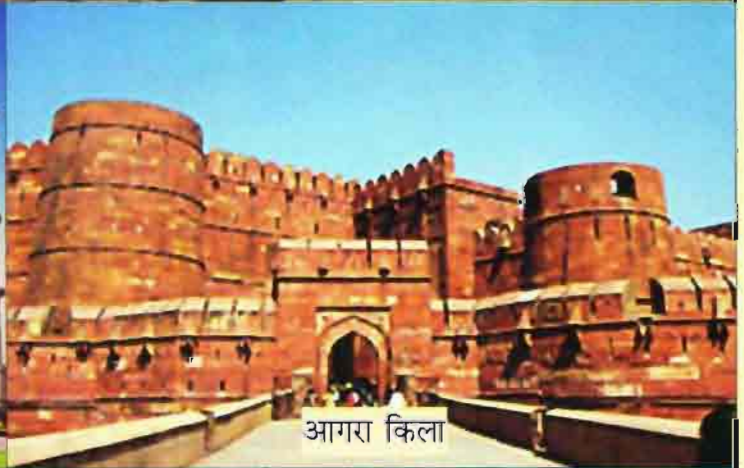
आगरा किला

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

इण्डिया गेट

विभिन्न स्थानों में आयोजित कार्यक्रमों की झाँकी

बेलूड़ मठ भक्त-सम्मेलन में आशीर्वाद देते प्रेसीडेन्ट महाराज

सरिषा (प. बंगाल) में युवती-सम्मेलन

वड़ोदरा सेमिनार में युवा-वृन्द

विवेकानन्द हवाई अड्डा में रथ का स्वागत

बिलासपुर विवेकानन्द पार्क में सभा

रायपुर माना कैम्प में रथ का स्वागत

कुरुद, रायपुर विद्यालय में सभा

मदर्स प्राइड, रायपुर में रथ का स्वागत

पत्रिका पृष्ठ और चित्र संयोजन - ब्रह्मचारी बोधमयचैतन्य

स्वामी विवेकानन्द की हिमालय-यात्रा (१०)

स्वामी विदेहात्मानन्द, पूर्व सम्पादक, 'विवेक ज्योति'

अब तक हमने देखा कि स्वामी अखण्डानन्दजी के साथ स्वामीजी ने छह दिन नैनीताल में निवास किया और उसके बाद पहाड़ों, जंगलों के मार्ग से अल्मोड़ा की ओर चल पड़े। मार्ग में स्वामीजी को कई प्रकार की आध्यात्मिक तथा अलौकिक अनुभूतियाँ हुईं। अल्मोड़ा में लगभग एक सप्ताह के प्रवास के दौरान कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएं हुईं और वे आगे बदरिकाश्रम के मार्ग पर चल पड़े। – सं.)

मृत्यु के सम्मुखीन

यहीं पर स्वामीजी के जीवन की एक अति महत्त्वपूर्ण घटना हुई, जिसके अनेक विवरण प्राप्त होते हैं। हम यहाँ पर उनमें से अधिकांश की मुख्य बातें देने की चेष्टा करेंगे।

जैसा कि हमने देखा कि स्वामीजी अपने गुरुभाइयों के साथ चन्द्रेश्वर महादेव के मन्दिर के पास एक कुटिया बनाकर भिक्षालब्ध अन्न का सेवन करते हुए ध्यान-भजन में तल्लीन थे। पर विधाता को यह मंजूर न था। अखण्डानन्द जी अपनी 'स्मृतिकथा' (पृ.५९) में बताते हैं कि वहाँ कुटिया में निवास करते समय स्वामीजी को निरन्तर हल्का-हल्का बुखार रहता था। पुरानी अंग्रेजी जीवनी के अनुसार एक दिन गुरुभ्रातागण अपनी कुटिया में विस्तार करने हेतु बाँस काँटने के लिये जंगल में गये थे, वहीं स्वामीजी पर तेज बुखार तथा डिफ्थीरिया रोग का प्रकोप हुआ। शारीरिक दुर्बलता बढ़ जाने से उनमें चलने-फिरने की शक्ति नहीं रही। वे बेहोशी की सी अवस्था में कुटिया के फर्श पर बिछे एक कम्बल पर पड़े रहे। एक दिन उनकी नाड़ी की गति धीरे-धीरे क्षीण होने लगी, खूब पसीना आने लगा, शरीर बर्फ के समान ठण्डा हो गया और वाणी बन्द हो गयी। वहाँ दूर-दूर तक कोई चिकित्सक नहीं था। उनके गुरुभ्रातागण उनका अन्तिम समय आया हुआ समझकर चिन्ता एवं शोक से अधीर हो उठे। निरुपाय होकर सभी कातर स्वर में परमात्मा से प्रार्थना करते हुए उनके प्राणों की भिक्षा माँगने लगे।

अखण्डानन्द जी की स्मृतिकथा के अनुसार – स्वामीजी को मरणासन्न देखकर तुरीयानन्द जी 'संकटा-स्तोत्र' का पाठ कर रहे थे; कृपानन्द के अनुसार वे 'आदित्य-हृदय-स्तोत्र' का और आगे उद्धृत होनेवाले भगिनी निवेदिता के पत्र के अनुसार वे 'चण्डी या दुर्गा-सप्तशती' का पाठ कर रहे थे।

उसी समय सहसा झोपड़ी के द्वार पर किसी के चरणों की आहट सुनाई दी और साधुओं ने विस्मित होकर देखा कि एक साधु खड़े हैं। उन लोगों ने उन्हें सादर आमंत्रित किया। साधु ने कमरे में प्रवेश करते ही स्वामीजी की अवस्था समझ ली और अपने थैले से थोड़ा-सा मधु तथा पिप्पल का चूर्ण निकाला और उसे आपस में मिलाकर स्वामीजी को धीरे-धीरे खिला दिया। स्वामी शिवानन्द जी ने बताया था कि दवा राख के जैसी थी, जो पिप्पल के चूर्ण तथा मधु में मिलाकर खिलायी गयी थी।[३७] अखण्डानन्द जी ने लिखा है – "सहसा कम्बल ओढ़े हुए एक साधु आये और बोले, 'क्यों रोते हो?' उन्होंने एक पुड़िया दवा देकर उसे मधु के साथ खिलाने को कहा। इसके बाद वे साधु न जाने कहाँ चले गये और खोजने पर भी नहीं मिले।"[३८]

भगिनी निवेदिता ने भी स्वयं स्वामीजी के मुख से इस घटना के विषय में सुनकर अपने ३ अगस्त १८९९ के पत्र में लिखा था, "मैंने उनसे मृत्यु के विषय में पूछा और उन्होंने मुझे बताया कि वे जानते हैं कि वह कैसी होती है। वे बोले, 'बारह या पन्द्रह वर्ष पूर्व (ऋषिकेश में) एक पहाड़ी के पास बनी एक झोपड़ी में मैं तुरीयानन्द तथा सारदानन्द के साथ रहता था। मैं तेज बुखार से ग्रस्त था और धीरे-धीरे डूबता जा रहा था। तब एक ऐसा क्षण आया जब मेरा शरीर कन्धों तक ठण्डा हो गया और तब मैं मरता जा रहा था, मरता जा रहा था,... इसके बाद धीरे-धीरे मेरी चेतना लौट आयी। मेरा कुछ कार्य बाकी था। जब मेरी चेतना लौटी, तो तुरीयानन्द चण्डी पाठ कर रहे थे और सारदानन्द रो रहे थे।' जब मैं तुरीयानन्द जी से इसके बारे में बातें कर रही थी, तो उन्होंने बताया कि यह एक चमत्कारिक इलाज था। रात अँधेरी थी, तेज हवा चल रही थी और उस भयंकर क्षण में, जब ऐसा लग रहा था कि उनके प्राण निकल रहे हैं, तभी उच्च स्वर में, 'भाई, डरो मत' – कहते हुए द्वार पर एक संन्यासी आये और भीतर आकर स्वामीजी की ओर देखकर बोले कि वे एक विशेष दवा के बारे में जानते हैं, जिससे उनकी बीमारी ठीक हो सकती है और बताया कि वह कहाँ मिल सकेगी। स्थान काफी दूर था और तुरीयानन्द जी उन्हें छोड़कर जाने में हिचकिचा रहे थे (क्योंकि सारदानन्दजी तब सो रहे थे, ताकि बारी-बारी से जागकर स्वामीजी की देख-भाल कर सकें), तभी एक अन्य संन्यासी आ गये और उन्होंने स्वयं जाकर दवा लाने का वचन दिया। उनके जाकर दवा ले आने पर तुरीयानन्द जी ने उन्हें दवा खिलायी। इसके पाँच मिनट बाद

मृत्यु के स्थान पर जीवन लौट आया और वे एक बार फिर जीवित हो चुके थे।''[३९]

दिव्य भविष्यवाणी

साधु की औषधि का आश्चर्यजनक फल हुआ। स्वामीजी ने थोड़ी देर में ही आँखें खोलकर अस्पष्ट स्वरों में कुछ कहना चाहा। एक गुरुभ्राता ने उनके मुँह के पास कान लगाकर उनके कुछ अस्पष्ट शब्द सुने, परन्तु कुछ समझ नहीं सके। अस्तु, धीरे-धीरे उनकी शक्ति लौटने लगी। बाद में उन्होंने गुरुभाइयों को बताया – अचेत अवस्था में मानो उन्हें विधाता से निर्देश मिला है कि उन्हें कोई विशेष कार्य सम्पन्न करना होगा और उसके पूरा होने के पूर्व उन्हें विश्राम नहीं मिल सकेगा। तभी से उनके गुरुभाइयों को स्पष्ट प्रतीत होता, मानो कोई विराट अव्यक्त असीमित शक्ति स्वामीजी के देह-मन का आश्रय लेकर अभिव्यक्ति के लिए उत्सुक होकर उपयुक्त अवसर की प्राप्ति के लिए व्याकुल है।[४०]

भगिनी देवमाता ने स्वामीजी विषयक अपने संस्मरणों में लिखा है – ''जब वे हिमालय की गोद में सूखी टहनियों से निर्मित एक साधारण-सी कुटिया में मरणासन्न पड़े थे, तब एक अशरीरी वाणी ने उनसे कहा था, 'अभी तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी। तुम्हें संसार में महान कार्य सम्पन्न करना है।' यह बात उन्होंने अपने साथ निवास कर रहे दो गुरुभाइयों को बतायी थी और उनमें से एक ने मुझे यह जानकारी दी थी। परन्तु वे लोग तब भला यह कैसे समझते कि वह अशरीरी वाणी एक भविष्यवाणी है?''[४१]

सत्येन्द्र नाथ मजूमदार ने अपने 'विवेकानन्द-चरित' में बताया है – चेतना लौटने पर स्वामीजी अस्फुट स्वर में बोल रहे थे, एक गुरुभाई ने उनके पास कान ले जाकर सुना, ''भाई, तुम लोग डरो मत – मैं मरूँगा नहीं।'' धीरे-धीरे स्वामीजी स्वस्थ होकर उठ बैठे और बोले, ''अज्ञान अवस्था में मुझे अनुभव हुआ कि अभी मेरे अनेक कार्य बाकी हैं। उनके पूरा हुए बिना मेरा देहत्याग नहीं होगा।''

इस प्रसंग में श्री बैकुण्ठनाथ सान्याल (तब कृपानन्द) के संस्मरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने अपने १३४३ बंगाब्द (१९३६ ई.) के एक पत्र में घटना का विवरण लिखा था, ''ऋषिकेश से चलकर पहले हरिद्वार और उसके बाद सहारनपुर होकर मेरठ में काफी दिन निवास हुआ था। ऋषिकेश में स्वामीजी के साथ हम तीन लोग थे – हरिभाई तुरीयानन्द, शरत् - सारदानन्द और मैं सान्याल - कृपानन्द।

''स्वामीजी तो चिरकाल से ही ध्याननिष्ठ थे, फिर ऋषिकेश के निकट पहुँचकर तो कहना ही क्या! एक दिन शाम को झोपड़ी के भीतर थोड़ी देर ध्यान करने के बाद वे अचेत होकर अपने कम्बल के आसन पर लेट गये। थोड़ा प्रलाप – 'तुम कहो, तो मैं मरूँ।' इसके बाद उनका शरीर ठण्डा हो गया, बोली बन्द हो गयी। हम लोग कुछ न समझ पाने के कारण किं-कर्तव्य-विमूढ़ हो गये। उस फकीरों की बस्ती में दवा या चिकित्सक नहीं थे। उनके आरोग्य की कामना से हरिभाई 'आदित्य-हृदय-स्तोत्र' पढ़ने लगे और हम लोग ठाकुर से प्रार्थना करने लगे। उसी समय हरिभाई के और बाद में हम लोगों के भी मित्र भगवान पुरी नामक एक आनन्दी साधु हरिभाई से मिलने आये। मैंने उन्हें स्वामीजी को दिखाने का अनुरोध किया, क्योंकि वे पूर्वाश्रम के चिकित्सक थे और पहले (पिछले वर्ष) कालीभाई (अभेदानन्द) की रुग्णता के समय उन्होंने थोड़ी-सी दवा भी दी थी।

''स्वामीजी को भलीभाँति देखने के बाद वे बोले, 'यह क्या रोग है, समझ नहीं पा रहा हूँ, देने के लिये कोई दवा भी नहीं है। तो भी यदि मधु में पिप्पल घिसकर लगातार जिह्वा से लगाया जाय, तो शरीर गरम होकर चेतना आ सकती है।' मैं तत्काल भरतजी के महन्त के पास जाकर पिप्पल तथा मधु ले आया और उसे पत्थर पर घिसकर स्वामीजी के मुख में लगाता रहा।... उस समय की हमारी आकुलता अवर्णनीय है। उस समय निर्विकल्प समाधि की बात कल्पना में भी नहीं आयी थी।

''भोर के समय स्वामीजी अत्यन्त क्षीण स्वर में बोले, 'शायद तुम लोग सोचते हो कि मुझे कोई बड़ी बीमारी हुई है और मैं मर जाऊँगा। इतने दिनों बाद प्रभु की कृपा से इस ऋषिकेश तीर्थ में मुझे पुनः निर्विकल्प समाधि हुई है।...

''हिमालय से नीचे उतरकर हम लोगों ने रात गंगा-मन्दिर में बितायी। अगले दिन सुबह एक भक्त-लाला द्वारा नवनिर्मित मकान में नवरात्र के व्रत-अनुष्ठान के समय, उनके घर ४-५ दिन निवास किया और भिक्षा ली। एक दिन हमने करणपुरा में फारेस्ट आफिसर शशी बाबू और अम्बिका बाबू के घर भिक्षा ली।''[४२]

सन्दर्भ –

३७. प्रबुद्ध भारत (अंग्रेजी मासिक), अक्तूबर १९४९; **३८**. स्मृतिकथा, स्वामी अखण्डानन्द, पृ. ५९; **३९**. Letters of Sister Nivedita, Vol 1, Pp. 192; **४०**. युगनायक विवेकानन्द, खण्ड १, पृ. २४८; **४१**. स्वामी विवेकानन्द की पावन स्मृतियाँ, नागपुर, पृ.१६१; **४२**. स्मृतिर आलोय स्वामीजी (बँगला), प्रथम संस्करण, पृ. ३६२

सफलता के तीन सूत्र – स्नेह सहयोग समर्पण

डॉ. दिलीप धींग
निदेशक, अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन व शोध केन्द्र, चेन्नई

स्नेह – सारा संसार स्नेह से बँधा है। स्नेह बिना जीना न केवल कठिन, अपितु असंभव है। यह बात और है कि हमारा स्नेह किस प्रकार का तथा कितना विस्तृत है। जब स्नेह को सीमित दायरे में जिया जाता है, तो वह मोह, आसक्ति व ममत्व का रूप ले लेता है। इसके विपरीत यदि स्नेह को विस्तारित किया जाय, तो वह कई सद्‌गुणों के रूप में विकसित, पल्लवित, पुष्पित और फलित होता है तथा हमारे व्यक्तित्व को उच्च-उच्चतर, श्रेष्ठ-श्रेष्ठतर और विराट बनाता है। स्नेहभाव से व्यक्तिगत आनन्द व सन्तुष्टि के साथ-साथ पारिवारिक-शान्ति, सामाजिक समरसता, राष्ट्रीय एकता और विश्व-बन्धुत्व की भावनाओं को चिरस्थायी बनाया जा सकता है।

स्नेह का एक अर्थ है - तैलीय पदार्थ, तेल या स्निग्धता। किसी यन्त्र या मशीन को कम आवाज और कम घिसावट के साथ गतिशील बनाए रखने के लिये स्नेह का प्रयोग किया जाता है। यही बात संस्था, संगठन या समाज में शत-प्रतिशत लागू होती है। स्नेहभाव से पारस्परिक सौहार्द बनता-बढ़ता है और बिना खटपट व अवरोध के कोई भी समूह या संघ निरन्तर गतिशील बना रह सकता है। दीपक भी स्नेह से जलता है। हम जीवन-दीप, अहिंसा और समता के दीप जलाये रखने के लिये स्नेह को कभी कम न होने दें।

सहयोग – जहाँ स्नेह होता है, वहाँ सहयोग स्वत: घटित होने लगता है। मनुष्य का सामाजिक प्राणी होने के नाते बिना सहयोग जीना सम्भव नहीं है। दीप में स्नेह हो और बाती न हो, तो कैसे जलेगा? सहयोग बाती की तरह है। 'तत्त्वार्थ सूत्र' (आचार्य उमास्वाति) की प्रसिद्ध सूक्ति है - **परस्परोपग्रहो जीवानाम्** – सभी जीव एक-दूसरे के सहयोगी, उपकारी होते हैं तथा पारस्परिक सहयोग से ही जीवन चलता है। यहाँ तक कि सन्तों और योगियों को भी सहयोग व सहयोगियों की जरूरत होती है।

व्यक्तित्व-निर्माण और सामाजिक सन्दर्भों में सामान्य और स्वार्थपरक सहयोग की बजाय विशिष्ट, स्वार्थ-मुक्त तथा व्यवस्थित सहयोग व सहयोग-भाव की जरूरत होती है। जिन्हें सहयोग की जरूरत है, उन्हें सहयोग प्रदान करना मानवोचित कर्तव्य है। जो सहयोग देना नहीं जानता, वह सामाजिक नहीं और जो सहयोग लेना नहीं जानता, वह भी सामाजिक नहीं है। सहयोग का आदान-प्रदान व्यक्ति, वक्त और वस्तु पर निर्भर करता है। कोई किसी एक प्रकार का सहयोग कर सकता है, तो दूसरा दूसरे प्रकार का। लेकिन कोई सहयोग किसी प्रति-सहयोग की अपेक्षा के साथ या दिखावे के लिये नहीं करना चाहिये। मुझे एक व्यक्ति ने पूछा - जीवन कैसे जीना चाहिए? मैंने कहा – **न्यूनतम लेना, अधिकतम देना और श्रेष्ठतम जीना।**

समर्पण – स्नेह और बाती (सहयोग) से जब दीप जलता है, तो तेल या घी खर्च होता है, तेल मिटता है। यह जो मिट जाना है, वह समर्पण है। यदि कहीं उजाला है, तो समझना चाहिये, कोई दीप चुपचाप जल रहा है। आज जहाँ समर्पण की बात आती है, अधिकतर व्यक्ति पीछे हट जाते हैं और प्रगति का चक्र थम जाता है। फिर वहाँ न स्नेह की उपयोगिता रह पाती है और न सहयोग रह पाता है। सामाजिकता तो बहुत दूर की बात है। इसीलिये आज मनुष्य बहुत आत्म-केन्द्रित, असामाजिक, अति-व्यावसायिक और स्वार्थी होता जा रहा है। विडम्बना यह है कि इस स्थिति के दुष्परिणामों को भोगने के बावजूद कोई त्याग-समर्पण को आनन्द के साथ जीने के लिये तैयार नहीं है। इस बात को मैंने एक मुक्तक में इस तरह व्यक्त किया है –

भीड़ में से मुझे मनुष्यों का वर्ग चाहिये,
त्याग की नींव पर बना दुर्ग चाहिये।
कौन है प्यार जो मिटा दे स्वयं को?
उत्कर्ष के लिये उत्सर्ग चाहिये।।

समस्त प्रकार की सफलताओं और उपलब्धियों के लिये समर्पण आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। बीज मिटता है, तो वृक्ष बनता है, जो पुन: अनेकों फूलों-फलों और बीजों को देने वाला हो जाता है। इस तरह समर्पण और विसर्जन नव-सृजन और अर्जन का कारण बन जाता है। लेकिन यह सब एक लम्बी यात्रा प्रक्रिया के बाद होता है और इस यात्रा को धैर्यपूर्वक तय करने वाले विरले ही होते हैं।

स्नेह, सहयोग व समर्पण हमें जीने की कला सिखाते हैं। जीवन में विश्वास, अनुशासन, मैत्री और कर्तव्यपरायणता के लिये इन्हें समग्र रूप से जीने का अभ्यास करना चाहिए। इन्हें जितना समझा और जिया जायेगा, उतना ही कोई व्यक्ति तथा संगठन अपना विकास कर सकेगा, जिससे समाज और देश भी लाभान्वित होंगे। ○○○

(प्रिय बच्चों ! सत्य जीवन का महानतम गुण है । इस बार हम तुम्हें कठिन परिस्थिति में सत्य से न डिगनेवाले सत्यवादी बच्चों से परिचित कराते हैं, जो बाद में बड़े महान बने । सं)

एक बार एक अध्यापक ने कक्षा में सभी बच्चों को गणित का एक प्रश्न दिया और घर से इसका हल कर ले आने को कहा । अगले दिन अध्यापक ने प्रश्न के बारे में पूछा । पूरी कक्षा में केवल एक ही विद्यार्थी ने उसका हल किया था । अध्यापक उससे बहुत प्रसन्न हुए और उसे सबसे आगे बैठने को कहा । पर यह क्या ! वह विद्यार्थी तो खुश होने के बजाय रोने लगा । अध्यापक को बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने पूछा, 'तुम तो सबसे बुद्धिमान लड़के हो, फिर रो क्यों रहे हो?

बालक ने सिसकते हुए कहा, 'मैं कक्षा में सबसे आगे बैठने के लायक नहीं हूँ । इस प्रश्न का हल मैंने दूसरों की सहायता से किया है । अपने सहपाठियों से आगे बैठने का मुझे अधिकार नहीं है ।

इस सत्यवादी विद्यार्थी का नाम था गोपाल कृष्ण गोखले । आगे चलकर यही बालक देश का महान नेता हुआ । हमारे देश के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजी भी इनकी बहुत प्रशंसा करते थे ।

स्वामी विवेकानन्द के बचपन का नाम नरेन्द्र था । बचपन में वे बहुत नटखट थे । स्कूल में अपने मित्रों के साथ गप्प लगाने में उन्हें बड़ा मजा आता था । इसके साथ-साथ वे पढ़ाई में भी सबसे आगे थे । वे बड़ी एकाग्रता से पढ़ते-सुनते थे । इसलिए उन्हें पढ़ने में भी ज्यादा समय नहीं लगता था । एक बार शिक्षक ने कक्षा में पढ़ाना शुरू किया । किन्तु नरेन्द्र का गप्प लड़ाना तब भी शुरू था । बाकी लड़के पाठ भूलकर उसे ही सुन रहे थे । उसी समय फुसफुसाहट से चिढ़कर शिक्षक लड़कों से जो विषय पढ़ा रहे थे, उसके बारे में पूछने लगे । सभी लोग चुप बैठे हैं, कोई भी उत्तर नहीं दे पा रहा है । शिक्षक एक-एक लड़के को खड़ा कर पूछ रहे हैं, पर कोई भी उत्तर नहीं दे पा रहा है ।

अब नरेन्द्र की बारी आयी । उसका मन तो बहुत एकाग्र था, वह कहानी भी सुना सकता था और शिक्षक जो कह रहे हैं, उसे भी सुन सकता था । नरेन्द्र ने शिक्षक के सारे प्रश्नों का उत्तर दे दिया । शिक्षक ने जब बाकी लड़कों से पूछा कि पढ़ाने के समय कौन कहानी सुना रहा था । सबने नरेन्द्र की ओर ऊँगली दिखायी । शिक्षक को तो विश्वास ही नहीं हुआ । उन्होंने नरेन्द्र को छोड़ सभी लड़कों को खड़े रहने को कहा । साथ-साथ नरेन भी खड़े हो गये । शिक्षक ने कहा, 'तुम्हें खड़े होने की जरुरत नहीं है ।' किन्तु नरेन्द्र तो सत्य बोलने वाले थे । उन्होंने कहा, 'नहीं मैं भी अपने मित्रों के साथ बातें कर रहा था, मैं भी खड़ा रहूँगा ।

प्रभु नाम मलयागिरि चंदन

मोहन सिंह मनराल, अलमोड़ा

व्याकुल होकर करो प्रार्थना, प्रभु मैं तुमको कैसे पाऊँ?
तुम हो अगम अगोचर, पास तुम्हारे कैसे आऊँ ।१।
संसार में ही पड़ा रहे तो, यह मन नीच हो जायेगा ।
विषय वासनाओं के दलदल से, मुक्त नहीं हो पायेगा ।२।
सब कुछ मन पर ही निर्भर है, जैसा रंग चढ़ाओगे ।
मन तो है रंगरेज का कपड़ा, वैसे ही रंग जाओगे ।३।
मन है दूध संसार जल, मिल जाये तो धुल जाये ।
निर्जन में बने जो मक्खन, फिर जल से न धुल पाये ।४।
संसार करो पर रहे ध्यान, यह तो केवल उनका है ।
अपना समझना ही है भूल, सौंप उन्हें यह जिनका है ।५।
संसार करो पर रहे ध्यान, विषय स्वयं को न जकड़ें ।
एक हाथ से पकड़ो संसार, दूसरे से प्रभु चरणों को पकड़ें ।६।
दासी की तरह रहो यहाँ, बस मेरा-मेरा छोड़ के ।
जितना मिल जाये संतोष, प्रभु से नाता जोड़ के ।७।
अपने ही कर्मों का बन्धन, अपने ही बंधन का क्रन्दन ।
जग तो मानो तप्त मरुस्थल, प्रभु नाम मलयागिरि चन्दन ।८।

ऐसी शक्ति हमें प्रभु देना

प्रा. ओ. सी. पटले, आमगाँव

हे भक्तिसागर श्रीरामकृष्ण ! ऋषि विवेकानन्द के ज्ञानदाता
जग-सिरमौर बनायें भारत, ऐसी शक्ति हमें प्रभु देना ।।
सत्यनिष्ठता धर्म तुम्हारा, सत्य-बचन-तप कर्म तुम्हारा ।
सत्यव्रत हम भी अपनायें, ऐसा विश्वास हमें प्रभु देना ।१।
मूल मंत्र था त्याग तुम्हारा, त्याग-तपोमय जीवन सारा ।
त्यागमय जीवन हो मेरा, ऐसी निष्ठा हमें प्रभु देना ।२।
सहज विमल सुचरित्र तुम्हारा, जीवन अखंड प्रेम की धारा ।
विमल प्रेम हममें भी आये, ऐसा स्वभाव हमें प्रभु देना ।३।
ज्ञान-भक्ति की अंखड धारा, हर भक्त प्राणों से प्यारा ।
सर्वत्र समदृष्टि अपनायें हम भी, ऐसी भक्ति हमें प्रभु देना ।४।
सभी धर्म तुमने स्वीकारा, हर देश-धर्म था तुमको प्यारा ।
स्नेह-प्रेम-सेवा सहिष्णुता, सबसे सद्भाव हमें प्रभु देना ।५।

स्वामी विवेकानन्द की प्रासंगिकता

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

(डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर के सचिव और छत्तीसगढ़ निजि विश्वविद्यालय विनियामक आयोग के अध्यक्ष हैं। वे ओजस्वी वक्ता, लेखक, कर्मयोगी और कुशल प्रशासक हैं। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, द्वारा आयोजित स्वामी विवेकानन्द जयन्ती समारोह के अवसर पर १३-१-२०१४ को मुख्य अतिथि के रूप में उन्होंने जो सारगर्भित व्याख्यान दिया था, उसे हम 'विवेक-ज्योति' के पाठकों के लिये प्रकाशित कर रहे हैं। इसका सी.डी. से अनुलिखन रायपुर की सुश्री क्षिप्रा वर्मा ने किया है।)

परम पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज, अन्य पूज्य संन्यासी वृन्द, उपस्थित देवियो, सज्जनो और छात्र-छात्राओ ! यहाँ मुझे मुख्य अतिथि के सम्बोधन से संबोधित किया गया है। इस सम्बोधन को सुनकर मुझे बहुत संकोच हो रहा है, क्योंकि यह सम्बोधन मुझ पर बहुत लागू नहीं होता। पूज्यपाद स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज की आज्ञा थी कि मुझे यहाँ आकर कुछ बोलना है। इसीलिये मैं यहाँ पर उपस्थित हुआ हूँ। पूज्यपाद स्वामीजी का स्नेह, निर्देशन, मार्ग-दर्शन और उनका आशीष प्राप्त करते-करते हमलोग इस स्तर पर पहुँचे हैं। हमलोग इस आश्रम के छात्रावास में रहा करते थे और स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज हमारे आदर्श थे। मुझे उनका मार्ग-दर्शन हमेशा मिलता रहता था और उन्होंने ही मुझे आज इस स्तर पर पहुँचाया है। मैं उनके चरणों में प्रणाम करता हूँ। अभी स्वामीजी मुझसे 'स्वामी विवेकानन्द की प्रांसगिकता' विषय पर बोलने को कह रहे थे। अत: कुछ बातें स्वामी विवेकानन्द के बारे में आपलोगों के समक्ष कहूँगा।

अभी हम सबने छात्र-वक्ताओं से स्वामी विवेकानन्द पर बहुत सुन्दर वक्तव्य सुने हैं। उनके व्याख्यान स्वामी विवेकानन्द के जीवन के विविध पक्षों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व ही बहु-आयामी था। जीवन के अनेक क्षेत्रों में उन्होंने पूर्णता प्राप्त की थी। उनका व्यक्तित्व एक स्फटिक मणि की भाँति था। हम चाहे जिस कोण से भी स्वामीजी के जीवन को देखें, वह पूर्ण ही दिखाई देता है। जब मैं स्वामी विवेकानन्द के जीवन पर विचार करता हूँ, तब मुझे लगता है कि जो हमारे उपनिषदों में "सत्यम् शिवम् सुन्दरम"का स्पंदन है, वह स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन में साकार हो गया है। बड़ा ही मोहक, बड़ा ही आकर्षक उनका व्यक्तित्व है ! आज से लगभग १२०-१२५ साल पहले अपने अमृतमय संदेशों से उन्होंने समूचे भारतवर्ष को झकझोर दिया था और आज भी उनकी वाणी हम सबको हिला दे रही है। युगनायक, युगद्रष्टा स्वामी विवेकानन्द ने आधुनिक युग में भारतीय चिन्तन को जितना अधिक प्रभावित किया है, निश्चित रूप से कोई दूसरा विचारक उतना नहीं कर पाया है। उनके प्रभाव में तीव्रता भी है, विस्तार भी है। जीवन के सभी वर्ग के लोगों को उन्होंने प्रभावित किया है। बालक-बालिकाओं, साधु-संतो, बुद्धिजीविओं, कलाकारों, राजनीतिज्ञों और समाज सुधारकों, सबको उनका अमृतमय जीवन हठात् अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। इसलिये आज इस अनिश्चितता के युग में, जब हम किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश करते हैं, जिससे हमें सही मार्गदर्शन प्राप्त हो, तो निश्चित रूप से स्वामी विवेकानन्द के अतिरिक्त कोई दूसरा महापुरुष हमारी आँखों के सम्मुख दिखाई नहीं पड़ता है। स्वामी विवेकानन्द की सबसे बड़ी सार्थकता और प्रांसगिकता तो यह है कि उन्होंने हमें जीवन के महत्व को बतलाया, जीवन के मूल्य का निर्धारण किया और मनुष्य-जीवन के प्रयोजन की प्रतिष्ठा की।

आधुनिक युग विज्ञान का युग है। यह एक ऐसा युग है, जहाँ चारों ओर विज्ञान की विजय-ध्वनि सुनायी दे रही है। धर्म और ईश्वर आज हमारे जीवन में अंधविश्वास बनकर सामने आये हैं। नैतिक मूल्यों का विघटन हो रहा है और भौतिक और इन्द्रिय-सुख ही हमारे जीवन के परम सुख के रूप में सामने आ रहे हैं। ऐसे युग में भगवान श्रीरामकृष्ण देव आते हैं और वे बतलाते हैं कि हमारे जीवन का लक्ष्य है – ईश्वर-प्राप्ति। स्वामी विवेकानन्द, श्रीरामकृष्ण देव की ही अनुभूति का प्रचार करते हैं। बड़ा ही अद्भुत और बड़ा ही विलक्षण श्रीरामकृष्ण देव का जीवन था ! वे तो आध्यात्मिकता के मूर्तिमान स्वरूप थे। उनको अपने जीवन में काम से इतनी विरक्ति हो गयी थी कि अपनी पत्नी में भी उनको जगत्-माता का रूप दिखता था। कांचन की विरक्ति तो इतनी बढ़ गई थी कि रुपयों-पैसों की बात तो दूर रही,

वे किसी धातु का स्पर्श भी नहीं कर सकते थे । भूल से यदि कभी किसी धातु का स्पर्श हो जाता, तो पीड़ा से ऐसे चिल्ला उठते, जैसे मानो सहस्त्रों बिच्छुओं ने एक साथ उनको डंक मार दिया है। हमारे उपनिषदों में जो 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की बात है, वह श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में पूरी तरह से समा गई थी। उन्होंने उस तत्त्व को पूरी तरह से अपने जीवन में समाहित किया था। दो मल्लाहों को आपस में क्रोधपूर्वक लड़ते देख और एक के द्वारा दूसरे पर प्रहार करते देखकर, वे पीड़ा से ऐसे चित्कार कर उठे, जैसे मार उन्हीं पर पड़ रही है। अपनी तीर्थ-यात्रा के दौरान अकाल-पीड़ित-त्रस्त संथाल नर-नारियों को देखकर करुणा से वे इतने अधिक विगलित हो गये कि घंटों उनके बीच बैठकर फूट-फूट कर रोते रहे। प्रकृति के साथ उनकी इतनी अधिक एकात्मता बढ़ गयी थी कि जब उन्होंने देखा कि एक आदमी हरे-हरे घासों को रौंदता हुआ चला आ रहा है, तब उनको ऐसा लगा मानो वह उनके हृदय को रौंदता हुआ चला आ रहा है। वे पीड़ा से कराह उठे और लोगों ने आश्चर्य से देखा कि व्यक्ति के चरण-चिह्न श्रीरामकृष्णदेव की छाती में अंकित हो गये हैं। "सर्वं खलु इदम् ब्रह्म" की अनुभूति श्रीरामकृष्ण देव को हुई थी। एक दिन मंदिर में पूजा करते हुए उन्होंने देखा – मंदिर का दरवाजा, मंदिर की छत, मंदिर का फर्श, मंदिर की खिड़कियाँ, इन सबमें एक ईश्वरीय शक्ति तरंगायित हो रही है। एक दूसरे दिन पूजा के लिये फूल चूनते समय उन्होंने देखा कि स्वयं प्रकृति फूलों की माला लिये ईश्वर की पूजा कर रही है। फिर तो उस दिन फूल नहीं चुन सके। एक एंग्लो इंडियन बालक को एक पेड़ पर टिककर खड़े होते हुये देखकर उन्हें भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण हो आया और वे गहरी समाधि में डूब गये। कलकत्ते की सड़कों पर वेश्याओं को खड़े देखकर श्रीरामकृष्ण देव कह उठे – "माँ तुम इतने रूपों में प्रकट होती हो ! एक रूप में तुम मंदिर में पूजित होती हो और दूसरे रूप में यहाँ सड़क पर खड़ी हो। मैं तुमको प्रणाम करता हूँ।"

श्रीरामकृष्ण देव ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहते थे। उन्होंने किसी भी वस्तु की कामना नहीं की थी। वे ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु का चिन्तन भी नहीं करते थे। ईश्वर को देखना, ईश्वर को पाना, ईश्वर से वार्तालाप करना, ईश्वर के साथ एकाकार हो जाना, यही श्रीरामकृष्ण देव की सबसे बड़ी लालसा थी। वे ईश्वर के साथ पूरी तरह से तन्मय हो गये थे। उनके जीवन में ईश्वर इतने घनीभूत हो गये थे, उनका ईश्वर के साथ तादात्म्य-भाव इतना बढ़ गया था कि ईश्वर के अतिरिक्त कोई पृथक सत्ता है, वे स्वप्न में भी नहीं सोच सकते थे। उनकी सत्य-निष्ठा इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि भूल से भी सत्य-पथ से उनका विचलन संभव नहीं था। सत्य, ज्ञान, वैराग्य, ईश्वर-दर्शन हेतु व्याकुलता, सर्वधर्म-समन्वय, नारी-सम्मान, नारी-शक्ति की पूजा, सर्वत्र भगवत दृष्टि और 'शिव भाव से जीव सेवा', ये सभी भाव श्रीरामकृष्ण में आकर साकार हुये थे। स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण देव के इन्हीं भावों का सारे संसार में प्रचार-प्रसार किया। श्रीरामकृष्ण देव ने इस अवस्था को सहजता से प्राप्त नहीं किया। इसके लिये उन्हें कई वर्षों तक कठिन साधना और कठिन व्याकुलता के क्षणों से गुजरना पड़ा था।

ईश्वर दर्शन की तन्मयता तो उनके जीवन में इतनी अधिक हो गयी थी कि उन्होंने ईश्वर-प्राप्ति के लिये अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर देना चाहा था। ऐसी व्याकुलता के क्षणों में श्रीरामकृष्ण देव को जगन्माता के दर्शन हुये, ईश्वर के दर्शन हुये। श्रीरामकृष्ण देव ने संदेश दिया कि मनुष्य जीवन का प्रयोजन है ईश्वर की प्राप्ति। श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे, ईश्वर के लिये कौन आजकल रोता है? किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाती है, तो लोग कितना रोते हैं ! कितनी आँसू बहाते हैं ! पर ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जो इस बात के लिये थोड़ा भी दुखी होता है, रुदन करता है कि भगवान तुमने मुझे दर्शन नहीं दिये। श्रीरामकृष्ण देव ने कहा, "मैं दावे के साथ कहता हूँ कि यदि तीन दिन कोई दिन-रात ईश्वर के लिये रोयेगा, तो उसे ईश्वर मिल जायेगें। इस ईश्वर-दर्शन को श्रीरामकृष्ण देव ने मानव-जीवन का परम प्रयोजन बताया। आज का मानव इस प्रयोजन से विमुक्त हो गया है। उसको इस तत्त्व का ज्ञान भी नहीं है। स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण देव की इसी अनुभूति को वैज्ञानिक और आधुनिक भाषा में संसार के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि मनुष्य के जीवन का प्रयोजन है अपने भीतर की दिव्यता को प्रकट करना। स्वामी विवेकानन्द ने बताया कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अनन्त शक्ति विद्यमान है और वह अनन्त शक्ति छिपी हुई है। भीतर की उस शक्ति को प्रकट करना है। उसी को

दर्शन की भाषा में प्रस्तुत करते हुये स्वामी विवेकानन्द कहते हैं

"Each soul is potential divine & the goal of the human life is to manifest that divinity within by controling nature, internal & external. Do it, either by work or by worship or by philosophy either by one or by all & be free."

"प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है। बाह्य एवं अन्त:प्रकृति को वशीभूत करके आत्मा के इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का परम लक्ष्य है। कर्म, उपासना, मन का संयम अथवा ज्ञान, इनमें से एक, एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना ब्रह्मभाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ।" यही मनुष्य के जीवन का प्रयोजन है। इस भौतिकवादी युग में स्वामी विवेकानन्द जी ने मनुष्य के जीवन को प्रतिस्थापित किया। उन्होंने मनुष्य के जीवन की सार्थकता और उद्देश्य को बताया। आज का युग एक ऐसा युग है जहाँ पर हम भ्रमित हैं। भौतिक इन्द्रिय-सुख ही हमारे जीवन के परम तत्त्व हो गये हैं। हमारा सिद्धान्त हो गया है – **यावत्-जीवेत, सुखम् जीवेत, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः?**

चार्वाक् ऋषि ने आज से हजारों वर्ष पहले यह भौतिकवादी दर्शन हमारे सम्मुख रखा था। एक समय था, जब इस देश के मनुष्यों ने इस दर्शन को नकार दिया था। किन्तु आज वही दर्शन अत्यन्त आकर्षक रूप में हम-सबके सामने आ रहा है, हम उससे मोहित हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में स्वामी विवेकानन्द और श्रीरामकृष्ण देव आते हैं और हमें हमारे जीवन का प्रयोजन बताते हैं। वह क्या है? वह है हमें आध्यात्मिक सत्य की उपलब्धि करना है। हमारे अन्दर के दिव्यत्व को प्रकट करना है। आज के युग की यह सबसे बड़ी आवश्यकता है। स्वामी विवेकानन्द ने इस धार्मिक संकीर्णता के युग में सर्व-धर्म समभाव, सर्वधर्म-समन्वय का उपदेश दिया। इस अनुभूति को भी उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव से ही ग्रहण किया था। श्रीरामकृष्ण देव ने एक बार जगत् माता से प्रार्थना की थी, "माँ ! मैं तो पढ़ना-लिखना कुछ नहीं जानता। तू ही मुझे सभी धर्मों के तत्त्व को समझा दे।" तब माँ उसकी व्यवस्था करती हैं। सभी धर्मों के गुरु दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण देव की कुटी में आते हैं। यही श्रीरामकृष्ण देव की विशेषता थी कि उन्हें धर्म की साधना के लिये कहीं बाहर नहीं जाना पड़ा। सभी धर्मों की साधना श्रीरामकृष्ण देव ने अपने जीवन में की। वैष्णव, शैव, शाक्त, तान्त्रिक, अद्वैतवादी, ईसाई और इस्लाम धर्म की साधना कर और उसकी अनुभूति द्वारा श्रीरामकृष्णदेव ने यह घोषणा कर दिया कि सभी धर्मों का अंतिम सत्य एक है। ये सभी धर्म विभिन्न सरिताओं की भाँति हैं। जैसे सभी नदियाँ टेढ़े-मेढ़े रास्ते से होते हुए अन्त में समुद्र में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही सभी धर्म अन्त में एक ही सत्य में विलीन हो जाते हैं। इसलिये श्रीरामकृष्ण देव ने कहा कि धर्मों को शास्त्रार्थ का विषय मत बनाओ, उसकी अनुभूति करने का प्रयास करो। ऋषि को एक बड़ी दिव्य अनुभूति होती है। उस अनुभूति से सम्पन्न होकर वे ऋषि 'शिवमहिम्न-स्तोत्र' में गा उठते हैं -

रुचीनां वैचित्र्याद्दजुकुटिल नाना पथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

– जैसे भिन्न-भिन्न नदियाँ टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे मार्गों से निकल कर, अन्त में एक ही समुद्र में विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभु, टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे मार्गों से जाने वाले लोग अन्त में तुझको ही प्राप्त होते हैं।

श्रीरामकृष्ण देव ने इस अनुभूति को अपने जीवन में जिया। वे सर्वधर्म-स्वरूप हो गये। स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण देव की इस अनुभूति का सारी दुनिया में प्रचार किया। स्वामी विवेकानन्द कितनी सुन्दर बात कहते हैं – "मैं आज तक के सभी धर्मों को स्वीकार करता हूँ, उनके साथ मैं ईश्वर की उपासना भी करता हूँ, चाहे वे जिस रूप में भी ईश्वर की उपासना क्यों न करते हों। मैं मुसलमानों के मस्जिदों में जाऊँगा, मैं ईसाईयों के गिरिजाघरों में जाकर क्रूस के समक्ष घुटने टेककर प्रार्थना करूँगा, मैं भगवान बुद्ध और उनकी शिक्षाओं की शरण लूँगा। मैं हिन्दुओं के साथ जंगलों में जाकर ध्यान करूँगा, जो हृदयस्थ परमात्मा का साक्षात्कार करने के लिये लगे हुए हैं।" इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने सर्वधर्म-समभाव को प्रतिष्ठित किया।

(क्रमशः)

हृदय प्रेम और भक्ति करना जानता है, और मस्तिष्क अच्छे-बुरे का विवेक करता है। ईश्वर-प्राप्ति के लिए इस प्रेम और विवेक को एक साथ मिलाना होगा।–स्वामी विज्ञानानन्द (श्रीरामकृष्ण के शिष्य)

युवकों की जिज्ञासा और उसका समाधान

स्वामी सत्यरूपानन्द

युवा-स्तम्भ

१०. धैर्य रखने के लिये क्या करें? और अपनी क्षमता अनुसार स्वयं का विश्लेषण कर लक्ष्य प्राप्ति के लिये इसका उपयोग कैसे करें ? – गरिमा पाण्डेय

उत्तर - धैर्य रखने के लिये पहली शर्त यह है कि हम आत्मनिरीक्षण के द्वारा यह जान लें कि हम क्यों और कब अधीर हो जाते हैं। उन कारणों को जानने के पश्चात् ही हमें उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना पड़ेगा। अधीरता एक ऐसा दुर्गुण है, जो साधारणत: तत्काल फल प्राप्ति की इच्छा या आंकाक्षाओं की शीघ्र पूर्ति होने के कारण होती है। हमारे कार्यों की सफलता के लिये हमें प्रतिक्षा नहीं करने देती। हमें सदैव यह ध्यान रखना चाहिये किसी भी कार्य की पूर्ति एवं सफलता के लिये एक निर्धारित समय होता है। हमें इस बात का ध्यान रखते हुये हमें अपने उस कार्य का निरीक्षण एवं परीक्षण करना चाहिये, जिस कार्य में हम सफलता प्राप्त करना चाहते हैं या जिस कार्य को हम पूर्ण करना चाहते हैं।

इस प्रकार के विचार द्वारा ही हम धीरे-धीरे धैर्यवान बन सकते हैं। धैर्यवान बनने के लिये प्रतीक्षा का गुण परम आवश्यक है

हमें सर्वप्रथम अपने लक्ष्य की शुद्धि, नैतिकता एवं उपयोगिता पर विचार करना परम आवश्यक होता है। हमारा लक्ष्य नैतिक दृष्टि से उचित एवं शुद्ध हो, वह सत्य पर आधारित हो तथा जनकल्याणकारी हो, महापुरुषों के शब्दों में बहुजनहिताय बहुजनसुखाय हो। ऐसा लक्ष्य ही मनुष्य के जीवन को उच्च एवं सफल कर सकता है जब तक हमारा लक्ष्य ऐसा नहीं होगा, हम शीघ्र अधीर एवं चंचल हो उठेंगे। आप सभी जानते हैं कि अधीरता एवं मन की चंचलता किसी भी शुभ एवं उत्तम लक्ष्य की प्राप्ति के सबसे बड़े शत्रु हैं।

सर्वप्रथम हमारा लक्ष्य क्या है, जब तक यह हमारे सामने अंगुली में पहनी हुई अंगूठी के सामान स्पष्ट नहीं होगा, तब तक हम कभी धैर्यवान नहीं हो सकेंगे। मनुष्य जीवन के सर्वांगीण विकास एवं उन्नति के लिये लक्ष्य का महान एवं जनहितकारी होना परम आवश्यक है। हमारे जीवन का लक्ष्य केवल भौतिक उन्नति, लाभ तथा इन्द्रिय-भोग ही न हो, ऐसा लक्ष्य किसी भी काल में मनुष्य के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर, उसे स्थायी सुख और स्थायी शान्ति कभी नहीं दे सकता है।

जब ऐसा उच्च लक्ष्य निर्धारित होगा तभी जीवन में धैर्य तथा अध्यव्यवसाय का प्रश्न एवं प्रसंग उपस्थित होगा।

'शनै: पंथा शनै: गंथ्रा: शनै: पर्वतलंघनम्', इस कहावत के अनुसार धीरे-धीरे किसी भी महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिये हमें निरन्तर प्रयत्न करना पड़ेगा।

अधीरता जन्मजात गुण नहीं है। हमने अपनी असावधानी, लापरवाही तथा तत्काल लक्ष्य प्राप्ति रूपी इच्छा के अधीन होकर स्वयं में अधीरता का दुर्गुण उत्पन्न कर लिया है। पहले इसे दूर करने का प्रयत्न करना पड़ेगा तभी जीवन में धैर्यपूर्वक कार्य करने का सद्‌गुण हमें प्राप्त हो सकेगा और तभी इसकी सदुपयोगिता का प्रश्न उपस्थित होगा।

बढ़ाये जा कदम जवान

डॉ. एस. एन. सुब्बाराव, दिल्ली

बढ़ाये जा कदम जवान, तू कदम बढाये जा।
गाये जा खुशी के गीत, तू जवान गाये जा।।
तू चला तो चल दिया, जमाना तेरे साथ-साथ।
तू रुका तो रुक गया, फसाना तेरे साथ-साथ।।
गा दिया तो छिड़ गया, तराना तेरे साथ-साथ,
प्रभातियाँ सुना-सुना, स्वदेश को जगाये जा।।
बढ़ाये जा कदम जवान, तू कदम बढाये जा।
गाये जा खुशी के गीत, तू जवान गाये जा।।
तू उठा तो उठ गया, देख नीला आसमान,
तू बढ़ा तो बढ़ गया, देख कितना यह जहान।
तू तना तो तन गया, निकाल सीना है पहाड़ा,
हँसता न बन उदास क्रान्ति गीत गाये जा।।
बढ़ाये जा कदम जवान, तू कदम बढाये जा।
गाये जा खुशी के गीत, तू जवान गाये जा।।

'रामकृष्ण' नाम और नाम-साधना

स्वामी चेतनानन्द, सेन्ट लुई, अमेरिका
(अनुवादक-ब्रह्मचारी पावनचैतन्य)

(गतांक से आगे)

जब श्रीरामकृष्ण कोलकाता में बलराम भवन या किसी भक्त के घर भगवन्नाम-कीर्तन करते, तो बहुत से लोग कौतुहलवश आते थे। वापस जाते समय कहते हुए जाते थे, ''परमहंसजी कितना सुन्दर माँ का नाम करते हैं ! एकदम हृदय में प्रवेश कर जाता है।'' [२१]

वचनामृत में विभिन्न स्थानों में हम देख पाते हैं कि ठाकुर किस प्रकार विभोर होकर विभिन्न देव-देवियों का नाम-कीर्तन करते थे –

कृष्ण हे दीनबन्धु ! प्राणवल्लभ ! गोविन्द ! हे कृष्ण ! ज्ञान कृष्ण ! प्राण कृष्ण ! बुद्धि कृष्ण ! मन कृष्ण ! देह कृष्ण !

प्राण हे गोविन्द, मम जीवन।

सच्चिदानन्द ! सच्चिदानन्द ! सच्चिदानन्द ! कारणानन्ददायिनी ! कारणानन्दमयी !

हरिबोल, हरिबोल, हरिमय हरिबोल, हरि हरि हरिबोल।

राम, राम, राम, राम, राम, राम, राम, राम, राम

जय जय दुर्गे, जय जय दुर्गे।

सहजानन्द, सहजानन्द।

ॐ काली, ॐ काली।

कालीई ब्रह्म, ब्रह्मई काली (भावार्थ काली ही ब्रह्म है, ब्रह्म ही काली है) महाकाली, नित्यकाली, श्मशान काली, रक्षाकाली, श्यामाकाली।

ब्रह्म-आत्मा-भगवान, भागवत-भक्त-भगवान,

गुरु-कृष्ण वैष्णव, ब्रह्म-शक्ति, शक्ति-ब्रह्म।

वेद, पुराण, तंत्र, गीता, गायत्री।

शरणागत शरणागत। नाहं, नाहं तू हूं, तू हूं। आमी यंत्र तुमि यंत्री। (भावार्थ – मैं यन्त्र और तुम यन्त्री हो)।

हरि ॐ ! हरि ॐ ! ॐॐॐॐ... ॐ काली।

कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! सच्चिदानन्द।

ॐ सच्चिदानन्द ! गोविन्द ! गोविन्द ! गोविन्द ! योगमाया

कृष्ण कृष्ण ! गोपीकृष्ण, गोपी !, राखाल जीवन कृष्ण

नन्द-नन्दन कृष्ण, गोविन्द, गोविन्द।

श्रीमन्नारायण, श्रीमन्नारायण, नारायण, नारायण।

जगन्नाथ, दीनबन्धु, जगबन्धु।

ओ माँ, ओ माँ, ब्रह्ममयी।

माँ, माँ, राजराजेश्वरी !

श्रीरामकृष्ण कभी भी एकांगी नहीं थे। वे अपनी अनुभूति के द्वारा यह जान गए थे कि एक ही ईश्वर के विभिन्न नाम हैं। किसी भी एक नाम का आश्रय लेकर अग्रसर होने से लक्ष्यस्थल ईश्वर में पहुँचा जा सकता है। एक दिन ठाकुर दक्षिणेश्वर में बैठे हुए 'गौर, गौर नाम गुनगुना रहे हैं। एक ने कहा, ''आप माँ का नाम कीजिए। 'गौर' 'गौर' क्यों करते हैं?'' ठाकुर ने तत्काल उत्तर दिया, 'और क्या कहूँ बापू बोलो? तुम लोग पाँच को लेकर रहते हो – स्त्री, पुत्र, कन्या, रुपया-पैसा, किन्तु मेरा तो एकमात्र यही आश्रय है। इसलिये कभी गौर कहता हूँ, कभी माँ, कभी राम, कृष्ण, काली, शिव, ऐसे ही समय व्यतीत करता हूँ।''[२२]

भव-रोग की औषधि नाम है। दु:ख-कष्ट ही भव-रोग है। ठाकुर भक्तों के इसी दु:ख-कष्ट को दूर करने के लिये गाना गाकर सुनाते थे; ''ओ गो, आनन्दमयी होये आमाय निरानन्द कोरो ना'' (भावार्थ – ओ, माँ, तुम आनन्दमयी होकर मुझे निरानन्द मत करो) ''नामेर भरोसा काली करी गो तोमाय'' (हे माँ काली तेरे ही नाम का भरोसा करता हूँ)। ''आमि दुर्गा-दुर्गा बोले मा यदि मरि, आखेरे ए दीने ना तारो केमने, देखा जाबे गो शंकरी।'' (भावार्थ – माँ यदि मैं दुर्गा दुर्गा कहते मर जाऊँ, तो देखता हूँ कि तुम कैसे नहीं तारती हो।

एक बार एक भक्त के द्वारा मन की दुर्बलता और विषयोन्मत्तता के सम्बन्ध में उपदेश के लिये श्रीम को निवेदन करने पर उन्होंने कहा, ''उनके (ठाकुर के) निकट व्याकुलता के लिये प्रार्थना कीजिये।'' भक्त – ''प्रार्थना करने की तो इच्छा नहीं होती।'' श्रीम – ''ठीक है, तो गुरुमंत्र का जप कीजिये। चित्त एकाग्र न होने पर भी प्रतिदिन दस-पन्द्रह हजार जप कीजिए। 'नाम लेत-लेते अनुराग होगा। विषयों से विराग होगा, फिर कुण्डलिनी जागृत होगी।'' भक्त – 'नाम-जप करने की भी तो इच्छा नहीं होती।'' श्रीम – ''तब तो बड़ी गम्भीर समस्या है, बचने की आशा कम है। नाम में रुचि है अंतिम चिकित्सा।

नाम में रुचि होने से भय नहीं है। धीरे-धीरे सब होगा।"[२३]

नाम साधना का फल

संसार के सभी लोग शान्ति, आनन्द और मुक्ति की खोज कर रहे हैं। ये तीनों परस्पर पृथक नहीं हैं। तीनों में एक है और एक में तीनों हैं। सामान्य व्यक्ति का मन दुश्चिन्ता, दुर्भावना, दुःख और अशान्ति से भरा है। नाम-साधना करने से मन की मलीनता निकल जाती है, शत्रु-नाश होता है, बुद्धि स्वच्छ और दृढ़ होती है तथा शरीर में स्फूर्ति आती है। स्वामी शिवानन्द कहते थे, "रामकृष्ण नाम इस युग का मंत्र है। जो यहाँ की शरण लेगा, उसका कल्याण हो जायेगा। बड़े प्रेम से उनका नाम-जप करते जाओ। नाम-जप नहीं करने से कुछ नहीं होगा। उनके नाम में ही सब शक्ति निहित है।" [२४]

भगवान युग-युग में विभिन्न नामों से अवतीर्ण हुए हैं। इस युग में वे 'रामकृष्ण' नाम में आविर्भूत हुए हैं।" इस नाम की अद्भुत महिमा है। संकट में यह नाम ही सहारा है, व्याधि में यह नाम औषधि है, अंधकार में यह नाम प्रकाश है, संपत्ति में यह नाम आनन्द है, मृत्यु के बाद यह नाम अमृतलोक में ले जाता है, संघर्ष में यह नाम शान्ति प्रदान करता है, ध्यान में यह नाम चित्त को परमात्मा में तैलधारावत् संयुक्त कर देता है।"[२५]

नाम साधना का मुख्य फल नामी का दर्शन या मुक्ति है और अवांतर फल शारीरिक और मानसिक शान्ति है। श्रीरामकृष्ण कहते थे, "भगवान का नाम लेने से मनुष्य का तन-मन सब शुद्ध हो जाता है।"[२६] ईश्वर के नाम की बड़ी महिमा है। शीघ्र फल नहीं भी मिल सकता है, किन्तु कभी न कभी इसका फल अवश्य मिलगा।"[२७] कभी वे कहते थे कि हाथ से ताली बजाकर भगवान का नाम करने से देह से पाप रूपी पक्षी उड़ जाता है। किंवदन्ति है कि राजा दशरथ के द्वारा एक शब्दभेदी बाण चलने से तीन ब्रह्म-हत्यायें हो गयीं। उसी महापाप के प्रायश्चित के लिये वे महामुनि वशिष्ठ के पास जाते हैं। मुनि कुटिया में नहीं थे, अतः उनके पुत्र वामदेव ने दशरथजी को तीन बार 'राम' नाम लेने का उपेदश दिया। बाद में पिता के आने पर उन्होंने ये सब बातें बतायीं। वशिष्ठ क्रोधित होकर पुत्र से कहते हैं, "तू चण्डाल होगा। जिस नाम का मात्र एकबार उच्चारण करने से त्रिभुवन में ऐसा कोई पाप नहीं है, जिससे जीव मुक्ति न पा जाय, उसी नाम को तीन बार उच्चारण करने के लिये कहकर तुमने नाम की महिमा को कम कर दिया है।"

श्रीरामकृष्ण कई बार हँसी में भक्तों के समक्ष नाम की महिमा को बताते थे। १ जनवरी, १८८३ ई. के दिन कुछ भक्त ठाकुर के लिये एक टोकरी जलेबी लेकर आये। वे आनन्द से थोड़ी-सी जलेबी तोड़कर खाये और भक्तों से बोले, "देख रहे हो, मैं माँ का नाम करता हूँ, इसलिये ये सब चीजें खा पा रहा हूँ!" सभी हँस पड़े। साथ ही साथ ठाकुर ने उन लोगों को पुनः स्मरण कराया, "किन्तु वे लौकी, कुम्हड़े का फल नहीं देती हैं, वे अमृतफल – ज्ञान, प्रेम, विवेक और वैराग्य देती हैं।[२८]

२१ सितम्बर, १८८४ को श्रीरामकृष्ण स्टार थियेटर में चैतन्यलीला देखने गये। 'श्रीरामकृष्णवचनामृत' में इसका वर्णन मिलता है - 'नाट्यभवन के व्यवस्थापक श्री गिरीशचन्द्र घोष कुछ कर्मचारियों के साथ ठाकुर की गाड़ी के सामने आए हैं, अभिवादन कर उन्हें सादर ऊपर ले गए। ... ठाकुर को दक्षिण-पश्चिम बॉक्स में बैठाया गया। ठाकुर के पास मास्टर बैठे। ... नाट्यभवन प्रकाशित है। नीचे अनेक लोग हैं। ठाकुर की बायीं ओर पर्दा देखा जा रहा है। बहुत से बॉक्सों में लोग हैं। प्रत्येक बॉक्स के पीछे एक-एक सेवक नियुक्त हैं, जो पीछे खड़े होकर पंखा झल रहे हैं। ठाकुर को पंखा करने के लिये गिरीश ने एक सेवक नियुक्त कर दिया। ठाकुर नाट्यशाला को देखकर बालक की भाँति आनन्दित हो रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर के प्रति, सहास्य) – वाह! यहाँ अच्छा है! यहाँ आकर बहुत अच्छा हुआ। बहुत लोग एक साथ रहने से उद्दीपन होता है। तब स्पष्ट देख पाता हूँ, वे ही सब हुए हैं।

मास्टर – जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण – यहाँ कितना लेंगे?

मास्टर – कुछ नहीं लेंगे। आप आये हैं, उन्हें खूब प्रसन्नता हो रही है।

श्रीरामकृष्ण – सब माँ की महिमा है।[२९]

इस युग में श्रीरामकृष्ण नाम-साधना का फल दिखा गए हैं। वे पैसे स्पर्श नहीं किए, संचय नहीं किए, घर नहीं बनाये, माँ का नाम करते हुये बड़े आनन्द में जीवन व्यतीत किये। श्रीमाँ सारदा देवी ठाकुर के नाम की महिमा के प्रसंग में विभिन्न समय कहती हैं, "ठाकुर ने मुझसे कहा था, 'जो उनका नाम लेते हैं, उन्हें कोई दुःख नहीं रहता।' यह उनकी स्वयं की वाणी है।"[३०] "ठाकुर कहते थे, जो

मुझे स्मरण करते हैं, उन्हें कभी भी खाने का कष्ट नहीं होता'।''[३१] ठाकुर कहते थे, 'जो मुझे पुकारेंगे, उनके लिये मुझे अन्त में उपस्थित होना होगा।''[३२] मनुष्य स्वयं के कर्मों के कारण दु:ख-कष्ट पाता है। इस विषय में अन्य किसी को दोष देना व्यर्थ है। श्रीमाँ कहती थीं, ''कर्मफल भोगना ही होगा। लेकिन ईश्वर का नाम लेने से जहाँ फाल लगता, वहाँ सुई चुभेगी। जप-तप करने से बहुत सा कर्म क्षय हो जाता है।''[३३]

''आप कौन हैं?''

श्रीरामकृष्ण रूप-नाम धारण करनेवाले व्यक्ति को समझ पाना बहुत कठिन है। स्वामीजी, गिरीशचन्द्र इत्यादि अनुभवी, विचक्षण और बुद्धिमान जैसे लोग भी भ्रमित हो जाते हैं। एक दिन गिरीश श्रीरामकृष्ण देव से पूछते हैं, ''महाशय, आप कौन हैं?'' प्रत्युत्तर में ठाकुर कहते हैं, ''मुझे कोई रामप्रसाद कहता है और कोई राजा रामकृष्ण कहता है। मैं यहीं रहता हूँ।''[३४] योगीन-माँ की नानी केशवचन्द्र सेन की पत्रिका में परमहंस देव के सम्बन्ध में निबन्ध पढ़कर दक्षिणेश्वर गयीं। श्रीरामकृष्ण की वेशभूषा भड़कीली नहीं थी, गेरुआ भी नहीं पहनते थे, माला-तिलक का कोई चिह्न तक नहीं था। इसलिये वृद्ध नानी अनजाने में ठाकुर से ही पूछ बैठीं, 'हाँ जी, यहाँ परमहंस कहाँ रहते हैं, बता सकते हो ?'' ठाकुर ने उत्तर दिया, 'क्या जानूँ बापू ! कोई परमहंस कहता है, कोई छोटा भट्टाचार्य कहता है। कोई गदाधर चटर्जी कहता है, कोई पागल ब्राह्मण कहता है। पूछकर देखो, कहीं होगें।''[३५]

श्रीरामकृष्ण स्वयं को गुप्त रखते थे। अपने नाम का प्रचार करने की प्रवृत्ति उनमें बिन्दुमात्र भी नहीं थी। भक्तों को कभी-कभी सांकेतिक रूप से या कभी सुस्पष्ट वाणी के द्वारा अपने वास्तविक स्वरूप का निर्देश करते थे, ''अज्ञात वृक्ष,'' ''बाउल का दल'', ''दीन-हीन कंगाल के वेश में जीवों के घर-घर में घूम रहे हैं'', ''भक्त के निमन्त्रण पर भोजन करने आते हैं'', 'सच्चिदानन्द (स्वयं के शरीर) के भीतर से बाहर निकलकर कहते हैं, 'मैं युग-युग में अवतार लेता हूँ।'' (नरेन्द्र से उन्होंने कहा) 'इसके (ठाकुर के) अन्दर से इन सबकी (विश्व की) उत्पत्ति हुयी है।'' ''एक दिन माँ ने अनेकों अवतारों के रूप को दिखाया। उनमें इसे (स्वयं का रूप) भी देखा।''[३६] इसके (स्वयं के) अंदर माँ स्वयं भक्त होकर लीला कर रही हैं।''[३७]

अन्तरंग शिष्यों ने भी ठाकुर की अनेकों प्रकार से परीक्षा लेने में कोई कसर नहीं छोड़ी। वे प्रत्येक बार ही उन सभी परिक्षाओं में उत्तीर्ण होकर हँसते-हँसते कहते, ''अभी भी अविश्वास ! विश्वास करो, दृढ़ धारणा कर लो, जो राम, जो कृष्ण हुए थे, वे ही वर्तमान में इसमें (अपने शरीर को दिखाते हुए) विद्यमान हैं, लेकिन इस बार गुप्त रूप से आना हुआ है ! जैसे राजा छद्मवेश में अपने राज्य का परिदर्शन करते हैं, जैसे ही कोई पहचान लेता है, काना-फूसी होने लगती है, वे वहाँ से चले जाते हैं, ठीक वैसे ही।''[३८]

(क्रमश:)

'विवेक-ज्योति' की मूल्य-वृद्धि सूचना

सम्माननीय पाठको ! 'विवेक-ज्योति' कई वर्षों से घाटे में ही चलती आ रही है। फिर भी हमने पाठकों की सुविधा हेतु मूल्य यथोचित नहीं बढ़ाया। २००८ से अब तक अन्य सभी सामग्रियों – कागज, मुद्रण, डाक, वेतन आदि की दरों में पर्याप्त वृद्धि हुई है, जिससे 'विवेक-ज्योति' के घाटे का प्रतिशत बहुत अधिक बढ़ गया है। इसका एक दूसरा कारण है कि हमने सितम्बर-२०१४ से आर्ट-पेपर में रंगीन पृष्ठ आरम्भ किया है और आवरण पृष्ठ तथा अन्दर के पृष्ठों के कागज को भी बदलने जा रहे हैं। इसलिये इसमें अधिक व्यय हो रहा है। हम घाटा सहते हुये ही इसका थोड़ा-सा मूल्य बढ़ाने जा रहे हैं। अब जनवरी-२०१५ से नयी मूल्य-राशि होगी – **वार्षिक शुल्क रु. ८०/-, एक प्रति रु.१०/-, पाँच वर्षों के लिये रु.३७०/- और आजीवन शुल्क (२० वर्षों के लिये) - रु. १४००/-, संस्थाओं के लिये वार्षिक रु.११०/- और पाँच वर्षों के लिये रु.५००/-** । आशा है आप हमारा पूर्ववत सहयोग करते रहेंगे। - स्वामी स्थिरानन्द, व्यवस्थापक, 'विवेक-ज्योति' कार्यालय।

२१. स्मृतिकथा – स्वामी अखण्डान्द, पृ. ४१; **२२.** श्री म दर्शन, खण्ड १, पृ.१७८; **२३.** उद्बोधन मासिक (बँगला), ८१ वाँ वर्ष, पृ. ५२२; **२४.** – शिवानंद वाणी, खण्ड २, २१६; **२५.** अस्तरागे आलापन, भाग १, पृ.१३१; **२६.** कथामृत, १/२/६; **२७.** वहीं, १/३/२; **२८.** वहीं, ४/१/१; **२९.** कथामृत २/१४/५; **३०.** श्री श्री मायेर कथा, २ खण्ड, पृ.८३; **३१.** वहीं पृ. १५३; **३२.** वहीं पृ. ७३; **३३.** वही, पृ. ११५; **३४.** ठाकुर श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द पृ.१०; **३५.** रामकृष्ण-सारदामृत - स्वामी निर्लेपानन्द, पृ. १६; **३६.** श्रीम दर्शन, खंड ९, पृ.१४३; **३७.** कथामृत, ४/२४/३; **३८.** लीलाप्रसंग, भाग २ गुरुभाव, पूर्वार्ध, पृ.७५;

इक्कीसवीं सदी हेतु उचित शिक्षा

पी. के. कृष्ण

(प्रोफेसर पी. के. कृष्ण जी ने देश-विदेश में विज्ञान, शिक्षा संस्कृति पर बहुत से व्याख्यान दिये हैं। उन्होंने जुलाई, १९९७ में स्वीडेन में आयोजित २२वें 'इंटरनेशनल मॉन्टेसरी कॉग्रेस' में शिक्षा पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण बाल-मनोविज्ञान से पूर्ण विश्लेषणात्मक व्याख्यान दिया था, जिसे रामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'वेदान्त केसरी' ने सितम्बर-अक्टूबर-१९९८ में प्रकाशित किया था। वर्तमान में शिक्षा की महती भूमिका को देखते हुये 'विवेक-ज्योति' के पाठकों के लिये वहीं से इसका अनुवाद सेवानिवृत्त अभियन्ता श्री एस. बी. जाधव, भिलाई ने किया है। – सम्पादक)

४. सहयोगिता के गुण का विकास करें प्रतिस्पर्धा की भावना का नहीं

वर्तमान विश्व में नाम और यश प्राप्त करने के लिये व्यक्तिगत उपलब्धियों की प्राप्ति पर ही अधिक बल दिया जा रहा है, जो तर्कहीन और अंहकारपूर्ण है। हम सभी आपस में एक-दूसरे से सम्बन्धित और एक-दूसरे पर अवलम्बित भी हैं, और थोड़ा जो वास्तव में सार्थक और महत्वपूर्ण है उसकी उपलब्धि अकेले, व्यक्तिगत रूप से की जा सकती है। किन्तु व्यक्तिगत उपलब्धियों और अकेले काम करने की अपेक्षा संगठित होकर काम करना और दूसरों के साथ मिलकर सामूहिक रूप से काम करने की योग्यता अधिक महत्वपूर्ण है। सहयोग ही प्रजातंत्र का सारतत्त्व है। व्यक्ति, व्यक्तिगत लाभ या किसी पुरस्कार की प्राप्ति हेतु काम नहीं करता, बल्कि समाज के कल्याण के लिये अंहकार के बदले बड़े प्रेम से काम करता है। इसके बाद यह महत्वपूर्ण है कि हर व्यक्ति, पुरुष या स्त्री अपनी क्षमता, योग्यता के अनुसार सर्वोत्तम काम करे, परन्तु यह महत्वपूर्ण नहीं है कि वह पुरुष या नारी एक-दूसरे से तुलनात्मक अच्छे हों। हम सब मित्र, भाई और बहन हैं, हममें आपस में प्रतिस्पर्धा नहीं होनी चाहिये।

यदि मेरे भाई के साथ कुछ अच्छा होता है, तो मैं उसके साथ खुशी मनाता हूँ, इसमें दुखी होने की कोई बात नहीं है। आजकल जिस प्रतियोगिता की भावना को हम बच्चों में प्रोत्साहित कर रहे हैं, वह बच्चों में ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा की भावना उत्पन्न करती है। ऐसी भावना मानव में भेद, पृथकता के बीज बोती है और प्रेम और मित्रता का नाश करती है। विश्वकप मैच और ओलंपिक में स्वर्णपदक जीतने को जो हम बहुत महत्व देते हैं, वह प्रचार-प्रसार एवं भ्रम पर आधारित है। क्या यह कोई बात है कि मनुष्य दूसरे सभी से एक मिलीमीटर ज्यादा ऊँची कूद लगा सकता है? जब हम पूछते हैं, "कौन जीता? तो हम सही प्रश्न नहीं पूछ रहे हैं? इससे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है – क्या उन लोगों ने उस खेल का आनन्द लिया?

५. तथ्य-संग्रह के बदले सृजनात्मक शिक्षा-अर्जन करें

स्मरण-शक्ति बढ़ाने की अपेक्षा बुद्धि-विवेक का जागरण अधिक महत्वपूर्ण है। यदि हम बालक को सही तथ्यों की जानकारी देते हैं, तो यह उसके ज्ञान में वृद्धि करता है, परन्तु बुद्धिमानी तो यह है कि वह स्वयं से शिक्षा ग्रहण करे। जो कुछ भी शिक्षा दी जा सकती है, वह सीमित होती है, किन्तु स्वयं से विद्या-अर्जन करने से असीमित अनन्त ज्ञान होता है। जीवन की सबसे बड़ी बातें, जो सिखाई नहीं जा सकतीं, अपितु स्वयं के अनुभव से सीखी जाती हैं। प्रेम का अनुभव, प्रेम का भाव, एक-दूसरे के प्रति आदर की भावना, सौन्दर्य का भाव और मित्रता यह किसी को सिखाया नहीं जा सकता, जैसे दूसरे के प्रति संवेदनशीलता, (दुख, करुणा, मुदिता, मित्रता की भावना), बल्कि संवेदना की तरह इन्हें मन में जाग्रत किया जा सकता है, और यही बुद्धि का महत्वपूर्ण भाग होता है। अपने लिये क्या सत्य है और क्या मिथ्या है, यह समझ लेने की क्षमता का होना भी ज्ञान है।

६. यथार्थ वैज्ञानिक और सच्चे धार्मिक मनोभाव का निर्माण करें

दुर्भाग्य से हमने वैज्ञानिक अनुसंधान को मानव के धार्मिक अन्वेषण से अलग कर दिया है और शिक्षा-प्रणाली में केवल विज्ञान पर अपना पूरा मन केन्द्रित कर दिया है। वास्तव में, वे दोनों एक-दूसरे के परिपूरक हैं, वे दोनों परस्पर संयुक्त अनुसंधान हैं, एक अनुसंधान का क्षेत्र बाहर है, जो पदार्थ, ऊर्जा, अंतरिक्ष, ब्रह्माण्ड, और समय की गति को प्रकट करता है और दूसरे के अनुसंधान का क्षेत्र, आंतरिक जगत है, जो शान्ति, समन्वय और सद्गुण का शोध कर प्रकाशित करता है। हमने गलती से धर्म को एक सिद्धान्त समझ कर धर्म और विज्ञान में एक विरोध का निर्माण कर दिया है। वास्तव में ये दोनों सत्य के अनुसंधान के, एक ही सत्य के, एक-दूसरे के दो परिपूरक पहलू हैं,

जो दोनों जड़ और चेतन के मिश्रण से निर्मित हैं।

मन जो पूर्ण तर्कसंगत, वैज्ञानिक और बौद्धिक है, वह भी अत्यन्त क्रूर, कठोर और प्रेम तथा करुणा से शून्य हो सकता है। जो केवल धार्मिक है, (सीमित अर्थ में) वह अति भावुक, संवेदनशील एवं अंधविश्वासी हो सकता है, अत: वह मनोरोगी भी हो जाता है। इसलिये हमें नई पीढ़ी में ऐसे मस्तिष्क के निर्माण का ध्येय बनाना चाहिये, जिसमें दोनों वैज्ञानिक एवं धार्मिक गुण हों, एक जो सूक्ष्म जीवन के मूल्यों को समझे, तार्किक, अन्वेषी और संशयी भी हो, परन्तु साथ-ही-साथ जिसमें सौन्दर्य, विस्मय, सौन्दर्य-शास्त्र का ज्ञाता हो, संवेदनशीलता, विनम्रता और बुद्धि की सीमा के बारे में सचेत हो। भावना और बुद्धि के इस प्रकार के स्वीकृत संतुलन के बिना व्यक्ति का मन यथार्थ शिक्षित नहीं होगा। स्वयं को समझना उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि जगत को जानना। प्रकृति के साथ, विचारों के साथ, सहचर मानवों के साथ, समाज के साथ और सभी प्राणियों के प्रति अपने घनिष्ठ सम्बन्ध को जाने बिना, कोई व्यक्ति वास्तविक रूप से शिक्षित नहीं हो सकता।

७. जीवन-जीने की कला

शिक्षा का सम्बन्ध अवश्य ही रचनात्मक जीवन जीने की कला से होना चाहिये, कुछ विशेष कला जैसे – चित्रकला, संगीत या नृत्य इत्यादि जो आजकल सिखाई जाती हैं। हमने जीवन की गुणवत्ता को, जीवन जीने के स्तर को समान जोड़कर देखा है और इसका आकलन सम्पूर्ण राष्ट्रीय उत्पादन के रूप में किया या प्रति-व्यक्ति की वार्षिक आमदनी के रूप में किया है। परन्तु क्या हमारे जीवन की गुणवत्ता को नापने की यही कसौटी है कि हम किस स्तर के घर में रहते हैं, या हम कौन-सी कार चलाते हैं, हम क्या भोजन करते हैं, या हम कौन से कपड़े पहनते हैं? क्या हमारा बौद्धिक स्तर, बुद्धि की गुणवत्ता हमारे जीवन के स्तर को दूर-दूर तक प्रभावित नहीं करती है? ऐसा मस्तिष्क जो सदैव चिन्ताग्रस्त, परेशान, ईर्ष्यालु या निरुत्साही, निराश रहता हो, वह उच्च आदर्श या उच्च स्तरीय जीवन यापन नहीं कर सकता है, उच्च आदर्श का मार्गदर्शन नहीं कर सकता है।

जब हम शिक्षा-ग्रहण करते हैं, तब आर्थिक उन्नति के लिये नहीं, मानव के विकास के लिये करते हैं, तब हमारा दृष्टिकोण प्रत्येक मानव के सम्पूर्ण आनन्द के लिये होना चाहिए, जिसमें मानव के भौतिक सुख और सुविधाएँ भले ही छोटी लगती हैं, किन्तु ये सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग हैं। इससे अधिक महत्वपूर्ण है, अपनी तुलना दूसरे के साथ किये बिना आनन्द, उत्साह के साथ काम करने की क्षमता का होना। यदि कोई सवेदनाहीन हो, तो वह हमेशा उबा हुआ रहेगा और इस स्थिति से बाहर आने के लिये निरन्तर प्रसन्नता को प्राप्त करना चाहेगा। सम्पूर्ण मनोरंजन का व्यवसाय, मानव समाज के उबाऊ, आलसी, थकान भरे काम करने के कारण है। जब हम बच्चों को कुछ पारितोषक के बदले में काम करना सिखाते हैं, तो कार्य करने में आनन्द नहीं सिखाते, हम उन्हें सिखाते हैं कि कार्य और आनन्द अलग हैं। इस तरह के मस्तिष्क में ऊर्जा का संचार तभी होता हैं, जब वहाँ कुछ पारितोषक हो, अन्यथा ऐसा मस्तिष्क आलस्य, ऊबाऊपन से भरा पड़ा रहता है। जीवन जीने की कला में हम जो भी करते हैं, वह प्रत्येक वस्तु आनन्द से परिपूर्ण होती है, अत: जो भी काम किया जाय, वह आनन्द के साथ किया जाय, चाहे अन्त में उसका परिणाम कुछ भी हो ! तब व्यक्ति संवेदनशीलता के साथ रचनात्मक काम करता है, किसी व्यक्तिगत इच्छापूर्ति के लिये नहीं।

८. शिक्षा क्षेत्र के सभी विभागों का उच्च-स्तरीय विकास

वर्तमान शिक्षा विशेषज्ञों के निर्माण में लगी हुई है। कुछ परिमाण में विद्या के क्षेत्र में पारंगत विशेषज्ञों की अपरिहार्य रूप से जरूरत होती है, परन्तु पहले हम मनुष्य हैं, फिर उसके बाद इंजीनियर, डॉक्टर, वकील, कलाकार और खेती करने वाले किसान हैं। अत: विशेषज्ञता की प्राप्ति मानवता के मूल्य पर नहीं होनी चाहिये, अर्थात् मानव का जीवन पूर्ण मानव-जीवन के समान हो !

मानवीय चेतना विविध क्षमताओं से पूर्ण होती है। मैंने उन क्षमताओं को कुछ भाग में विभक्त किया है, साधारण शब्दों में उन्हें चार श्रेणी में विभक्त कर उनका वर्णन किया जा रहा है –

मानव-चेतना के विभाग

(अ) स्वाभाविक – बोध (प्रत्यक्ष ज्ञान), सजगता, निरीक्षण, सावधानी।

(ब) विचार-केन्द्रित – ज्ञान, स्मरण-शक्ति, कल्पना-शक्ति, तर्क, विश्लेषण, आलोचना, विज्ञान, गणित, भाषा, एकाग्रता, ज्ञान (विचारों का), इच्छा-शक्ति।

(स) भावना पर आधारित – आनन्द, सौन्दर्य, आश्चर्य, सौन्दर्य शास्त्र, हास्य रस, कला, संगीत, काव्य, साहित्य, सहानुभूति, प्रेम, अनुराग, स्नेह, करुणा, मित्रता, आसक्ति आन्तरिक लगाव, इच्छा, भय, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध।

(द) विचार और भावनाओं के अतीत – अन्त:प्रेरणा, अन्तर्प्रज्ञा, अन्तर्दृष्टि, ज्ञान, मौन, ध्यान, शान्ति समन्वय, समझ, बुद्धिमत्ता।

उपरोक्त सूची सम्पूर्ण नहीं है, इसमें कोई भी अनेकों दूसरे शब्दों को जोड़ सकता है। न तो इसकी श्रेणियाँ सम्पूर्ण हैं, क्योंकि विचार, भावनाएँ और निरीक्षण, सब एक साथ ही हमारी अन्तश्चेतना में चलती रहती हैं और परस्पर एक-दूसरे से प्रतिक्रिया करती रहती हैं। अत: यह वर्गीकरण केवल विवेचन की सुविधा के लिये है। वर्तमान आधुनिक शिक्षा विचारों के ऊपर आधारित वर्गीकरण पर अधिक जोर दे रही है और कुछ मात्रा में भावनाओं पर आधारित है। मनुष्य के उच्च-कोटि के विकास के लिये यह बहुत महत्वपूर्ण है कि उपरोक्त सभी विभागों की गहरी समझ हो और व्यक्ति का विकास सभी उपरोक्त गुणों में संतुलित रूप से हो। इसका तात्पर्य है कि शिक्षा के एक विभाग का विकास करने के लिये हम किसी दूसरे की हानि न करें। इसका अर्थ यह है कि हम भय एवं दण्ड-शक्ति का उपयोग नहीं कर सकते। इससे उनकी जिज्ञासा, बुद्धिमत्ता एवं आत्मप्रेरणा, उत्साह का नाश हो जाता है। हमें इसका तुलनात्मक उपयोग भी नहीं करना है, प्रतियोगिता का उपयोग प्रोत्साहन के लिए भी नहीं करना है, क्योंकि इससे प्रेम का नाश होता है और शत्रुता को प्रश्रय मिलता है। हमें पारितोषक देने को भी आगे नहीं बढ़ाना है, क्योंकि इससे लालच और संवेदनहीनता का विकास होता है।

तब प्रोत्साहन के लिये हमारे शिक्षकों को क्या करना चाहिये, जिससे विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करें? इसने हमारे काम को और भी कठिन कर दिया है। हमारे सामने यह चुनौती है कि सीखने के विषय की सुन्दरता को बच्चों के सामने प्रगट करें, जिससे शिक्षा एक आनन्दमय प्रणाली बन जाय, एक उबाऊ, उदासीन काम जिसे किसी भी प्रकार, येन-केन प्रकार से प्राप्त किया जाय, ऐसा नहीं हो। यदि हम, इस चुनौती को स्वीकार करते हैं, तो हमें ऐसी प्रणाली की खोज करनी पड़ेगी, जिससे शिक्षा जीवन्त और बच्चों के पसन्द के लायक उनकी रुचि के योग्य बन सके। एक अच्छा स्कूल वह होता है, जहाँ बच्चे खुश होते हैं, वह स्कूल नहीं, जहाँ बच्चे केवल अति उच्च मापदण्डों के साथ शैक्षणिक उच्च योग्यता को प्राप्त करते हैं। शिक्षा की वास्तविक जिम्मेदारी बच्चों के सामने जीवन के सभी सौन्दर्य – कला, साहित्य, विज्ञान, गणित, संगीत, खेल-कूद, प्रकृति और आपसी सम्बन्धों में, वास्तव में जीवन के हर क्षेत्र में महान सौन्दर्य है, इसे प्रगट करना है। हमलोगों को युक्तिपूर्वक एक अच्छा अनुमान है कि एक पूर्ण विकसित वृक्ष का क्या अर्थ होता है। परन्तु क्या हमने कभी गंभीरता से यह अनुसंधान किया है कि पूर्ण विकसित मानव की अन्तश्चेतना का क्या अर्थ होता है? क्या शिक्षा को इसकी खोज में हमारी सहायता नहीं करनी चाहिये?

ऐसी शिक्षा को प्रदान करने में बाधायें

ऐसी शिक्षा देने में बहुत सी बाधायें हैं। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हमें स्वयं ही सही शिक्षा नहीं मिली है। अत: हम जो जानते हैं, उसकी यंत्र के समान हमें केवल पुनरावृत्ति नहीं करनी है। हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली के बारे में जिज्ञासा करने की आवश्यकता है, केवल पुनरावृत्ति करने की नहीं, जैसाकि हमारे शिक्षकों एवं अभिभावकों ने किया। हमें मौलिक और बुद्धिमान होकर रचनात्मक कार्य करने की आवश्यकता है, केवल लकीर के फकीर बनने की नहीं।

शिक्षा के नये दृष्टिकोण में हमारा उत्तरदायित्व बच्चे को केवल सूचनाएँ और किसी क्षेत्र में निपुणता प्रदान करना ही नहीं है, अपितु बच्चे में संवेदनशीलता और रचनात्मकता जाग्रत करना है। इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करने के लिये अब तक कोई व्यवस्थित पद्धति नहीं है। ये सब चीजें केवल निर्णय, अभ्यास और उपलब्धि से नहीं की जा सकती हैं। फिर भी यदि स्कूल और घर में सही वातावरण हो, तो बच्चे में जागृति लाई जा सकती है। यह हमारा दायित्व है कि हम ऐसे वातावरण का निर्माण करें, जिसमें आनन्द और मित्रता के साथ परस्पर सहयोग से कार्य हो, कठिन परिश्रम हो, परन्तु व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा रहित हो, प्रतिस्पर्धा की भावना से रहित हो, हृदय उदार हो, उन्मुक्त मनोभाव का वातावरण हो, जिसमें ज्ञान की जिज्ञासा हो और साथ-साथ सीखने की, शिक्षा-प्राप्ति का आनन्द हो। इसका अर्थ है कि हम स्वयं आनन्द से रहें और परस्पर सहयोग से प्रसन्नतापूर्वक वैसा कार्य करें।

केवल भाषण से कार्य नहीं होता। अपने आसपास घट रही घटनाओं को देखकर बच्चा उससे सीखता है, हम कक्षा में क्या पढ़ाते या कहते हैं, केवल उससे नहीं सीखता है। यदि बच्चा देखता है कि हम कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं, तो बच्चा भी यथार्थ में वैसा ही सीखता है। ऐसा करने से बच्चा हमसे कपट करना सीख जाता है। जब बच्चा गणित का जोड़ नहीं जानता है, तब हम बच्चे को सजा देते हैं, ऐसा शिक्षक यह भी सूचित करता है कि एक बलवान अपने प्रभाव से दुर्बल को दण्डित कर सकता है। अत: हमें बहुत सावधान रहना होगा । हमने ऊपर जिस शिक्षा का विस्तृत वर्णन किया है, उसे प्रदान करने का कोई संक्षिप्त मार्ग नहीं है। एक बच्चा जो कुछ देखता है, वही सीख लेता है, वह उन बातों को नहीं सीखता जिसके बारे में व्याख्यान दिया गया है।

हम वयस्क लोग बौद्धिक रूप से बच्चों से अधिक जानते हैं, परन्तु जीवन के बड़े मुद्दों में हम भी वैसे ही समस्याओं का अनुभव करते हैं, जैसे बच्चे अनुभव करते हैं, जैसे – ऊब जाना, चिन्ता, भय, आदत, संघर्ष, इच्छाएं, निराशा और हिंसा। अत: हमें भी बच्चों के साथ सीखने की जरूरत है, केवल बच्चों को सिखाने की नहीं, इसके लिये बहुत ईमानदारी, नम्रता, संवेदनशीलता और धैर्य चाहिये। यही हमारी कठिनाई है, जो भी शिक्षक होना चाहता है, उसे इन चुनौतियों को स्वीकार करना होगा, उसे अन्य सरल मार्ग नहीं ढूँढ़ना चाहिये। गम्भीर सत्य का उदय एक विचारशील, चिन्तनशील मन में अन्तर्दृष्टि के रूप में होता है, जिसे कोई सिखा नहीं सकता है। अन्तर्दृष्टि का निर्माण करने के लिये कोई कुछ विशेष नहीं कर सकता, किन्तु अति महत्वाकांक्षा और अत्यन्त क्रियाशील होकर जिसे रुक कर सोचने-समझने का समय ही नहीं है, ऐसे व्यग्र मन द्वारा रोककर उसकी स्वाभाविक प्रगति में बाधा नहीं पहुँचाना चाहिये।

निष्कर्ष

मानव एक बड़े भ्रम में फँस गया है। वह सोचता है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान कानून बनाकर, राजनीति और सामाजिक सुधार, विज्ञान एवं तकनीकि उन्नत्ति के साथ, विशाल ज्ञान, अपार धन-सम्पत्ति, महान शक्ति और अधिक नियंत्रण से कर सकता है। कुछ समस्याएँ तो, इससे हल हो जायेंगी, परन्तु वे सब छोटी समस्याएँ हैं और उनका समाधान भी अस्थाई होगा। इस पद्धति से हम एक ओर नई समस्याओं का निर्माण करते रहेंगे और साथ-ही-साथ उनका समाधान भी करने का प्रयास करेंगे और दूसरी ओर यह भ्रम पालकर रखेंगे कि हम उन्नति कर रहे हैं। प्रसिद्ध हास्य कवि ओगडन नैश ने लिखा है – ''विकास करना एक बार अच्छा है, परन्तु यह बहुत लम्बा होता गया।'' हमें इस टिप्पणी को गम्भीरता से विचार करना चाहिये। यदि हम मानवों में भीतर से परिवर्तन नहीं हुआ, तो हम शीघ्र ही उन दुर्भाग्यशाली प्रजातियों में शामिल हो जायेंगे, जो लाखों साल पहले अस्तित्व में थीं और प्रकृति के साथ अपने को बदल न सकने के कारण विलुप्त हो गईं। यदि यह निश्चित नहीं है कि पूँछ विहीन बंदर से मनुष्य का क्रमिक विकास हुआ है, तो वास्तव में यह मनुष्य के अस्तित्व के लिये एक कदम आगे बढ़ना हुआ। समय ही आगे बतायेगा। जीवन के लिये अपना अस्तित्व जीवित रखने के लिये विकास के ज्ञान की जरूरत नहीं होती, परन्तु सहयोग की योग्यता, परस्पर प्रेम एवं प्रकृति के साथ समन्वय पूर्वक रहने की आवश्यकता होती है। चींटी की सामुहिक जीवन जीने की क्षमता मनुष्य से अधिक होती है। आज हमें अधिक योग्यता, अधिक दक्षता की नहीं, लेकिन हमें एक-दूसरे का अधिक सान्निध्य, महान करुणा, परस्पर अधिक मिल-जुलकर रहना, परस्पर बाँटकर खाना, परस्पर सुख-दुख-संवेदना को समझना और सामूहिक रूप से एक साथ कार्य करने की सामर्थ्य होनी चाहिये।

इक्कीसवीं सदी में शिक्षा का सम्बन्ध अधिक-से-अधिक विकास से सम्बन्धित न होकर, मानव के आन्तरिक चेतना के परिर्वतन में करना है। ऐसा नहीं कि इसके पहले इसे और किसी ने नहीं बताया। सभी धर्मों के प्रवर्तकों – भगवान बुद्ध, सुकरात, ईसामसीह और भी असंख्य ऋषियों, सभी ने पहले ही इस सम्बन्ध में उल्लेख किया है। अब तक हम उन महान व्यक्तियों की शिक्षाओं की उपेक्षा कर रहे थे, परन्तु फिर भी किसी तरह से प्रबन्ध करके हम अपने अस्तित्व को जीवित रखे हुए हैं। हम ऐसा ही करने का साहस अब और अधिक समय तक नहीं कर सकते, क्योंकि हम अत्यन्त क्रूर न्यूक्लियर – महाविनाशकारी अणु-विस्फोट की ओर बढ़ रहे हैं, जो हमारे अस्तित्व को ही रहने लायक नहीं रहने देगा। अत: यह बात मानव समाज के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जो इससे पहले इतनी महत्वपूर्ण नहीं थी। OOO **समाप्त**

आधुनिक भारत के निर्माता स्वामी विवेकानन्द

स्वामी समर्पणानन्द
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय, बेलूड़ मठ, हावड़ा

बात आज से हजारों-हजार साल पहले की है । वहाँ इतिहास की खोजी निगाह नहीं पहुँच सकती, और वहाँ से परम्परा की अस्फुट किरण किसी मद्धिम सितारे की तरह इंगित-इशारे मात्र कर सकती है । यह वह समय था, जब यूनान सभ्यता की सीढ़ियों पर चढ़ना सीख रहा था, रोम बर्बर था, इंग्लैण्ड के लोग अपने को लाल-नीले रंग से पोत रहे होते थे, एवं अमेरिका के जन्म होने में हजारों साल बाकी था । विस्मय मिश्रित गर्व की बात है कि उस समय हमारे पूर्वज ऋषिगण सिंधु नदी के किनारे, मौन की गहराई को पारकर, समाधि की अवस्था में सृष्टि एवं स्रष्टा के तत्त्व के सम्मुख खड़े होकर उन सत्य को उद्भासित कर रहे थे ।

इन्द्रियातीत, उस अवस्था में उन ऋषियों के शुद्ध हृदय में सत्य की परत-दर-परत खुल रही थी । शुरू हुआ था वेद ऋचाओं का आविष्कार होना । 'अग्निमीडे पुरोहितं' से शुरू कर 'ॐ भूर्भुवः स्वः' मंत्र आदि भारत भूमि में नादित होने शुरू हुए । ये मंत्र किसी व्यक्ति विशेष द्वारा रचित न होने के कारण अपौरुषेय कहलाये, एवं वे तब से आज तक भारतीय आध्यात्मिक धरोहर के मूल बनकर भारतीय समाज एवं भारतीय संस्कृति का रक्षण-पोषण कर रहे हैं । साम्राज्य, सत्ता, समाज, आदि बनते रहे, टूटते रहे, पर ये वेद अचल-अटल प्रस्तर भित्ति के समान भारत एवं हिन्दू संस्कृति को ध्वंस होने से बचाये रखे ।

ऋषि परम्परा टूटी नहीं । कभी अवतार के रूप में, तो कभी युग प्रवर्तक के रूप में । युग पुरुष आते ही रहे, और आकर वेद वर्णित सत्य को प्रमाणित करते ही रहे । इसी परम्परा में सप्तर्षि मंडल से १८६३ में आगमन हुआ एक युग-पुरुष का, जो २३ साल की उम्र में संन्यासी बनकर स्वामी विवेकानन्द कहलाए और मात्र ३९ वर्ष की उम्र में धराधाम को छोड़कर वापस अपने दिव्य लोक चले गये । पर जाने के पहले वे भारत ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व के लिये एक अद्‌भुत आध्यात्मिक विरासत छोड़ गये ।

नरेन्द्रनाथ दत्त के रूप में जन्म लिये, कालातीत ये महापुरूष १७-१८ वर्ष की उम्र में श्रीरामकृष्ण परमहंस, जिन्हें हम अवतार के रूप में जानते एवं पूजा करते हैं, उनसे मिले । अपने गुरू से नरेन को मिला वैदिक परम्परा का आध्यात्मिक निचोड़ । केवल ईश्वर दर्शन नहीं, केवल जीव-ब्रह्म ऐक्य नहीं, वरन् नरेन को मिला वह अनोखा-ज्ञान जिसके द्वारा साधक हर व्यक्ति, एवं हर वस्तु में वही एक परमार्थ सत्ता देखता है । पर भला इस ज्ञान मात्र के लिये युगावतार, सप्तर्षि मंडल से किसी को क्यों लाने गए? इस प्रश्न के उत्तर में ही स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व का सार छिपा है ।

स्वामीजी की जीवनी में हम पढ़ते हैं कि वे अपनी स्वाभाविक उच्च आध्यात्मिक अवस्था के कारण समाधि में लीन होकर ही रहना जीवन का उद्देश्य मानते थे । पर श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें इस बात के लिये धिक्कारा, और कहा कि वे उन्हें एक विशाल वट-वृक्ष के रूप में देखना चाहते हैं, जिसके तले जीवन ज्वाला से ज्वलित, पीड़ित एवं जर्जरित सहस्र, शत-सहस्र मनुष्य आश्रय ले सकें ।

१८८६ में श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के पश्चात नरेन्द्रनाथ अपने पुराने व्यक्तित्व का चोला छोड़ कर निकल पड़े स्वामी विवेकानन्द के रूप में । शुरु हुआ उनका भारत भ्रमण । पर उस समय भी उन्हें अपने जीवन लक्ष्य का स्पष्ट आभास नहीं था । भ्रमण करते-करते वे सिन्धु नदी के तट पर पहुँचे, जहाँ एक दिन उन्हें एक दिव्य दर्शन हुआ, जिसमें उन्होंने एक पुरातन ऋषि को तट पर बैठे देखा, जिन पर मानो कोहरे की घनी लहरें आ-आकर टूट पड़ रही थीं । वे ऋग्वेद से पाठ कर रहे थे, और स्वामीजी ने देखा की वे स्वयं भी उनके साथ ऋचा का पाठ कर रहे हैं –

आवाहि वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनिम्,
गायत्री छन्दसां माता ब्रह्मयोनि नमोस्तुते ।

बाद में इस दर्शन की व्याख्या करते हुए स्वामीजी ने कहा था कि "आचार्य शंकर को भी शायद ऐसा ही कोई दर्शन हुआ था, जिसके बाद उन्होंने वेदों के लय को पकड़ा था, जो भारतीय जाति के राष्ट्रीय सुर हैं, भारतीय जीवन-संगीत की धुन हैं ।" उस दिव्य दर्शन के बाद से मानो स्वामीजी के जीवन में एक परिवर्तन होना शुरू हुआ, और वे बढ़ने लगे नवभारत के निर्माता बनने की ओर । गुजरात के द्वारकावास के दौरान एक दिन ध्यान करने के समय उन्हें एक महान दिव्य ज्योति का दर्शन हुआ, जो भारत के स्वर्णिम भविष्य का द्योतक था ।

स्वामीजी कन्याकुमारी पहुँचे । तीन महासमुद्रों के मिलन स्थल पर अवस्थित अन्तिम शिला पर जाकर वे ध्यान निमग्न हुए । उस समय वे जिस समाधि की अवस्था में पहुँचे, उसे

योगशास्त्र में धर्ममेघ समाधि कहते हैं। इस अवस्था में योगी पूर्ण ज्ञान पाकर कृत-कृत्य हो जाता है।

स्वामीजी को उस अवस्था में भारत का भूत, वर्तमान एवं भविष्य स्पष्ट हो उठा। मौन मुखर हो उठा तथा उस गहराई के परिपूर्ण हृदय में नवभारत के नवस्वप्न की रूपरेखा सजीव हो उठी। बाद में इसी भाव को निराला जी ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'सरस्वती वन्दना' में छंद बद्ध कर लिखा –

नव गति, नव लय, ताल छंद नव,
नवल कंठ, नव जलद-मंद्र रव,
नव नभ के नव विहग वृंद को नव पर नव स्वर दे।

स्वामीजी ने अनुभव किया कि जन-गण की उपेक्षा ही भारत के अध:पतन के मूल में है – समाज के शक्तिशाली लोगों द्वारा सुविधाओं को अपनी मुट्ठी में कर लेना। नियम, कानून, विधि-निषेध का आधिक्य।

लेकिन साथ में स्वामीजी ने यह भी देखा कि भारत ही धर्म है, एवं धर्म ही भारत है। भारत के अध:पतन में धर्म का कोई हाथ नहीं। धर्म के वास्तविक तत्त्व को समझकर, उसे सामने लाकर एवं उसे पूर्ण रूपेण प्रतिष्ठित कर ही भारत में पुन: प्राणशक्ति का संचार किया जा सकता है। लेकिन 'भूखे भजन न होय गोपाला' – इसलिए आवश्यकता थी भारत की अवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन की।

अपने दिव्य दर्शन आदि की व्याख्या करते हुये स्वामीजी का निष्कर्ष था कि पूरे विश्व को आलोक चाहिये, जो केवल भारत के पास है। भारत का संदेश है कि शान्ति, सद्भाव, धैर्य आदि दैवी सम्पद की ही अन्तिम विजय होगी।

तो क्या हम वापस अपने पुराने आदर्शों पर चलें?

नहीं, यह सम्भव नहीं। यह सम्भव नहीं कि हम फिर से वैदिक काल में वापस जायें, जहाँ आकाश यज्ञाग्नि के धुँए से मलिन रहता था। यह भी संभव नहीं कि हम मनु बाबा के दिखाई राह पर चलना शुरू करें, या फिर से वर्ण-व्यवस्था आदि को लाएँ। साथ ही भारत के सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक अवस्था में महान परिवर्तन हो चुका है। आज हम स्वाधीन हैं। लोगों में चेतना का विकास हुआ है। शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अन्न के लिये अब लोग मुँहताज नहीं है। जो थोड़ी कमी है, वह अपनों के कारण अपनों के स्वार्थ और निकम्मेपन के कारण है।

अतएव स्वामीजी के सन्देश को हमें एक नई दृष्टि से देखने की आवश्यकता है, और अगर आज के सन्दर्भ में हम उन्हें देखें, तो चार आदर्श हमारे सामने स्पष्ट होते हैं। कोई भी व्यक्ति इन चार में से किसी एक आदर्श को अपनाकर, अपने आपको उसके प्रति पूर्ण समर्पित कर सकता है और उसे ऐसा ही करना पड़ेगा।

नए भारत के चार नव आदर्श

विद्या – जो इस आदर्श को अपनाना चाहे, उसे अपनी विद्या के क्षेत्र में श्रेष्ठतम बनना पड़ेगा, चाहे वह विद्या का कोई भी क्षेत्र हो। जूते सिलाई करने से लेकर परमाणु विज्ञान तक किसी भी विद्या को अपनाया जा सकता है। केवल उद्देश्य रहेगा उस विद्या में विश्व में श्रेष्ठतम होना।

सम्पद – दूसरा आदर्श है धन-अर्जन को बिना व्यक्तिगत आदर्श बनाए, देश के लिये सम्पत्ति खड़ी करना। मेहनत से काम, किफायतसारी, वाणिज्य, नए-नए आविष्कार आदि के द्वारा देश के सम्पद को इस स्तर पर ले जाना कि संसार अवाक् होकर देखे।

सेवा – स्वामीजी ने कहा था, "गर्व से कहो मैं भारतवासी हूँ। प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, मूर्ख भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी मेरा भाई है.... भारत भूमि मेरे लिये स्वर्ग है ... भारत की भलाई मेरी भलाई है ...।' इस आदर्श को सामने रखकर हर व्यक्ति जो विद्या या सम्पद के प्रति समर्पित नहीं है, वह अपने को सेवा के प्रति समर्पित कर सकता है। किसी भी क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति इस आदर्श को जीवन-सूत्र के रूप में ले सकता है।

उदाहरण के लिये हम फिनलैण्ड की वृद्धा को देखें। १९३९ में रूस के साथ युद्ध के समय सरकार ने लोगों से अनुनय किया कि कुछ विशेष क्षेत्र के लोग अपना सब कुछ देश को अर्पित करते हुए, अपने घरों में आग लगाकर राजधानी की ओर चले आएँ। उस वृद्धा ने स्वयंसेवकों द्वारा आग लगाने के पहले अपने घर को सजाया, क्योंकि वे अपने घर को देश की पूजा के रूप में अर्पित कर रहीं थीं।

त्याग – भारत ब्रह्मविद्या की भूमि है, अतएव यहाँ हमेशा त्यागी पुरुष होंगे ही, जो ईश्वर, धर्म और अध्यात्म के नाम पर सब कुछ त्याग कर निकल पड़ेंगे। ब्रह्मविद्या इनके ही हाथों सुरक्षित रहेगी। समाज को पथ दिखाना इनका ही कर्तव्य होगा। ऐसे त्यागी पुरुष का आदर्श होगा – पूर्ण त्याग। कामिनी-कंचन का त्याग। नाम-यश-प्रतिष्ठा का त्याग। इसका सोलह आने त्याग देखकर ही साधारण लोग एक आने का त्याग कर सकते हैं।

संक्षेप में, विद्या, सम्पद, सेवा, त्याग – इन चारों में से किसी एक के प्रति पूर्ण समर्पण के द्वारा ही हम भारत के स्वर्णिम भविष्य की कल्पना कर सकते हैं। जो किसी एक में सफलता हासिल नहीं कर सकते, वे एकाधिक आदर्श को

अपना सकते हैं । यही आदर्श स्वामीजी के भारत-निर्माण की कुंजी है –

विद्यां वा सम्पदं सेवां त्यागं यत्नेन सेवताम् ।
सर्वो जनः सदा स्वस्य क्षेमाय भारतस्य च ।।

उपसंहार – स्वामी विवेकानन्द जी की १५०वीं जयन्ती मनाई जा रही है । पर ऐसी जयन्ती तो हम कितनों की ही मनाते हैं । हम एकत्रित होते हैं, भाषण सुनते हैं, तालियाँ पीटते हैं, चाय-लड्डू खाते हैं और फिर वापस अपनी-अपनी खोह में छिप जाते हैं ।

क्या स्वामीजी के साथ भी हम ऐसा ही करना चाहते हैं? क्या उन्हें भी हम प्रस्तर-प्रतिमा और वार्षिकोत्सव में बदल देना चाहते हैं? नहीं, यह अन्याय होगा । सैकड़ों सदियाँ हमें आशा भरी निगाहों से देख रही हैं, हमारे पूर्वज जिस विरासत को हमारे लिए छोड़ गए, जिसे कार्यान्वित करने के लिए साक्षात् भगवान ने अपने विशेष दूत को साथ लाया, वह मात्र विरासत नहीं, पर वह हमारे लिये एक धरोहर भी है । आने वाली पीढ़ी कल को हमसे पूछेगी कि पूर्वजों द्वारा छोड़ी गई हमारी विरासत कहाँ गई? हमने क्यों अपनी सम्पत्ति गँवा दी? अपनी नादानी के कारण हमने उन्हें उनके अधिकार से क्यों वंचित किया? तो हमारे पास इसका कोई उत्तर नहीं होगा ।

इसीलिए हमें स्वयं पूर्ण बनना होगा, और दूसरों को पूर्ण बनने में सहायता करनी पड़ेगी । भारत का वर्तमान एवं भविष्य, साथ ही सम्पूर्ण विश्व का वर्तमान एवं भविष्य हमारे खुद के जीवन से जुड़ा है । हम उन महापुरुषों के साथ दगा नहीं कर सकते । भारत को विश्व-मंच पर सर्वोच्च आसन दिलाना हमारा कर्त्तव्य है । इसीलिए भाई, **'उठो, जागो, और लक्ष्य की प्राप्ति न होने तक चलते रहो, बढ़ते रहो...OOO**

विवेकानन्द रथ का छत्तीसगढ़ प्रवास

एक रथ-यात्री की डायरी से

८ जनवरी, २०१४ को रथ राजनांदगाँव में

प्रात: ७.३० बजे भिलाई आश्रम में रथ की आरती-पूजा के बाद स्वामी प्रपत्त्यानन्द और हिमाचल मढरियाजी ने अनेकों भक्तों के साथ स्वामीजी की मूर्ति की आरती-पूजा कर स्वामी विभानन्द जी, नारायणपुर को रथ सौंप दिया । स्वामीजी का रथ राजनांदगाँव की ओर प्रस्थान किया ।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के सह-सचिव स्वामी अनुभवानन्द जी महाराज के निर्देशन में रथ राजनांद गाँव, दल्ली राजहरा, भानुप्रतापपुर, अंतागढ़, नारायणपुर, किरन्दुल, बचेली, दन्तेश्वरी मंदिर, जगदलपुर, बोरगाँव, फरसगाँव, लंझोड़ा, कोण्डागाँव, केशकाल, कांकेर और धमतरी आदि स्थानों का भ्रमण करते हुये स्वामी विवेकानन्द रथ २४ जनवरी, २०१४ की शाम को कुरुद ग्राम में पहुँचा । वहाँ शाम को कुरुद ग्राम में रथ का भ्रमण और रेस्ट हाउस में रात्रि-विश्राम कराया गया ।

स्वामी विवेकानन्द जी पर दूरदर्शन-परिचर्चा

२२ जनवरी, २०१४ को ३ बजे दूरदर्शन केन्द्र, रायपुर में स्वामी विवेकानन्द जी पर परिचर्चा हुई । जिसमें स्वामी सत्यरूपानन्द जी और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने स्वामी विवेकानन्द जी की प्रासंगिकता एवं अन्य कई प्रश्नों के उत्तर दिये ।

स्वामी विवेकानन्द रथ का रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वाधान में २५ जनवरी से २ फरवरी तक विभिन्न स्थानों पर स्वागत हुआ

२५ जनवरी, २०१४ को कुरुद में रथ का स्वागत

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने अपने सहयोगी स्वामी प्रपत्त्यानन्द और ब्रह्मचारी नन्द कुमार के साथ कुरुद ग्राम में रथ का स्वागत किया । स्वामी अनुभवानन्द जी ने स्वामी विवेकानन्द रथ का प्रभार रायपुर, आश्रम के स्वामी प्रपत्त्यानन्द को सौंप दिया । आज से रथ प्रपत्त्यानन्द के निर्देशन में लगभग ४४ विभिन्न शिक्षण संस्थानों आदि में भ्रमण किया । कुरुद-ग्राम विधायक श्री अजय चन्द्राकर जी का गाँव है, जहाँ उनके निर्देश पर बड़ी भव्य तैयारी कई स्कूलों में की गयी थी और बड़े उत्साह के साथ वहाँ के लोगों ने स्वामीजी के रथ का भव्य स्वागत किया गया । स्वामी सत्यरूपानन्द जी के निर्देश पर विधायक जी के सहयोगियों ने बहुत अच्छी व्यवस्था की थी । वहाँ चार स्कूलों में रथ का स्वागत हुआ – **१. शासकीय विद्यालय कुरुद, २. शासकीय कन्या विद्यालय, कुरुद, ३. किरण पब्लिक स्कूल कुरुद और ४. सेन्ट मेरी अँग्रेजी स्कूल, कुरुद** । सब जगह सभायें हुयीं, जिसमें स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी अनुभवानन्द और स्वामी प्रपत्त्यानन्द, नगर पंचायत, कुरुद की अध्यक्ष श्रीमती ज्योति चन्द्राकर और अन्यान्य लोगों ने व्याख्यान दिये । वहाँ 'वन्दे मातरम् परिवार' के अध्यक्ष श्री भानु चन्द्राकर और उनके साथियों का बहुत सहयोग मिला । उसके बाद श्रीमती ज्योति चन्द्राकर के यहाँ भोजन के बाद रथ रायपुर में शदाणी दरबार के लिये प्रस्थान किया ।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द मेमोरियल, बड़ोदरा, के तत्त्वावधान में स्वामी विवेकानन्द जी की १५०वीं जन्म-जयन्ती समापन समारोह के एकांश रूप में ४ अगस्त, २०१४ को प्रो. मेहता ऑडोटोरियम में 'सकारात्मक चिन्तन और युवा-परामर्श' नामक विषय पर एक सेमीनार का आयोजन किया गया। समारोह का उद्घाटन महाराजा सैयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ोदरा की कुलाधिपति श्रीमती मृणालिनी देवी पॉर ने किया। स्वामी आत्मदीपानन्द जी महाराज की शान्ति प्रार्थना के बाद स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी महाराज ने मंचस्थ अतिथियों एवं आगन्तुक अतिथियों का स्वागत किया तथा विषय वस्तु की प्रस्तावना रखी। व्यवहार में सकारत्मक शब्दों के प्रयोग हेतु प्रसिद्ध मनोचिकित्सा विशेषज्ञ डॉ. बी. एम. पालन ने परामर्श दिये। वेदान्त केसरी के सम्पादक स्वामी आत्मश्रद्धानन्द जी और रामकृष्ण मठ, राजकोट के अध्यक्ष स्वामी सर्वस्थानन्द जी ने विषय पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला। बेलूड़ मठ से आये स्वामी विवेकानन्द जी की १५०वीं जयन्ती के अखिल भारतीय संयोजक स्वामी विश्वात्मानन्द जी महाराज ने अपने अध्यक्षीय भाषण में वर्तमान परिवेश में युवा-परामर्श के महत्त्व की व्याख्या की। ४ महासागर और ७ समुद्रों में युवा तैराकी कुमारी भक्ति शर्मा ने अपनी उपलब्धियों पर प्रेरक व्याख्यान दिये। सामूहिक परामर्श-सत्र में युवक-युवतियों की विभिन्न प्रकार की समस्याओं का प्रख्यात विशेषज्ञ डॉ. किरण शिंगलोट ने समाधान किया। युवक-युवतियों को यह कार्यक्रम बहुत अच्छा लगा और उनमें से बहुत से लोगों ने विवेकानन्द सकारात्मक चिन्तन केन्द्र के सदस्य बनने की इच्छा व्यक्त की।

छत्तीसगढ़-मध्यप्रदेश रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द भावधारा का अर्धवार्षिक अधिवेशन

६ और ७ सितम्बर, २०१४ को कोरबा रामकृष्ण-विवेकानन्द सेवा समिति के तत्त्वावधान में छत्तीसगढ़-मध्यप्रदेश रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा का अर्धवार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। भावधारा के अध्यक्ष स्वामी सत्यरूपानन्द जी, उपाध्यक्ष स्वामी व्याप्तानन्द जी, स्वामी राघवेन्द्रानन्द जी, स्वामी नित्यज्ञानन्द जी ने सभा को सम्बोधित किया। स्वामी तन्मयानन्द, स्वामी एकात्मानन्द, स्वामी देवभावानन्द आदि ने भाग लिया। इसमें बेलूड़ मठ के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित थे रामकृष्ण मिशन, जयपुर के सचिव स्वामी हृदानन्द जी महाराज। भावधारा के १६ केन्द्रों ने भाग लिया। कुल १३ सन्तों और १११ भक्तों ने भाग लिया। सबको कोरबा से ६० किलोमीटर दूर गोमुखी, सेवाधाम, देवपहरी आदि स्थानों का भ्रम कराया गया।

रामकृष्ण मिशन द्वारा किये गये राहत-कार्यों का संक्षिप्त विवरण

बाढ़-राहत कार्य - उड़िसा के भद्रक जिले में अतिवृष्टि के कारण कुछ स्थानों पर बाढ़ आ गयी। मिट्टी के घर क्षतिग्रस्त हो गये और फसल नष्ट हो गयी। **रामकृष्ण मिशन आश्रम, कोठार** ने ६ से १० अगस्त तक कोठार और काशीमपुर ग्राम पंचायत के ९ गाँवों में १६६० परिवारों को पका भोजन और ४०० किलो बिस्कुट देकर प्रारम्भिक राहत कार्य किया। **रामकृष्ण मिशन, पुरी** ने १० से २६ अगस्त तक ११६०किलो गेहूँ, २००० किलो चिउड़ा, २९४० किलो सत्तू,५७९२ पैकेट बिस्कुट ५३७९ परिवारों को बाँटा। **उत्तर प्रदेश** - बलरामपुर जिले में भारी बाढ़ आने पर **रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, लखनउ** ने हरिया, सतगढ़वा आदि १७ गाँवों में २० से ३० अगस्त तक १०,१०० भोजन-पैकेट,११०५ साड़ी, ७८३ धोती, ४४९ लुंगी बाँटा और ३३५० लोगों की चिकित्सा की। **पश्चिम बंगाल** - दक्षिण २४ परगना में २० से २४ अगस्त तक ६ गाँवों के ५८० लोगों को राहत दी गयी। **सूखा राहत कार्य** - राजस्थान के **रामकृष्ण मिशन, खेतड़ी** ने ३२००० लीटर पानी १३२० परिवारों को २८ जुलाई से ५ अगस्त तक दिया। **बांगलादेश -रामकृष्ण मिशन, दिनाजपुर ने** जिले के करनाई में त्रिकक्षीय स्कूल का निर्माण कराया। **अगरतला आश्रम** ने ४०४ मच्छरदानी कंचनपुर में, **चंडीपुर** ने १०० सारी, **इच्छापुर** ने चावल-चिउड़ा, आटा, साड़ी, धोती, **रामकृष्ण मठ, नागपुर** ने २७ स्कूलों के गरीब बच्चों को १२०७ स्कूल ड्रेस, ४०६० नोटबुक, १५०० पेन, १३७ ज्योमेट्री बॉक्स, ६५ स्कूल बैग वितरित किये। **पोन्नमपेट** ने २०४९ गरीब छात्रों को ९०४३ नोटबुक, १४०६ पेन, ८८०पेन्सील, २६३ स्केल, ८८० इरेजर, ९० स्लेट प्रदान किया।पत्राचार और दान देने के लिये निम्न-लिखित पते पर सम्पर्क करें –

रामकृष्ण मिशन (रिलिफ-सेक्शन), पोस्ट - बेलूड़ मठ, जिला - हावड़ा, पश्चिम-बंगाल (भारत), पिन -७११२०२ दूरभाष - (०३३) २६५४११४४ / ११८० / ५३९१ / ९५८१ / ९६८१ ।(०३३) २६५४५७०० / ५७०१ / ५७०२ /५७०३ / ८४९४

E-mail –rkmrelief@gmail.com
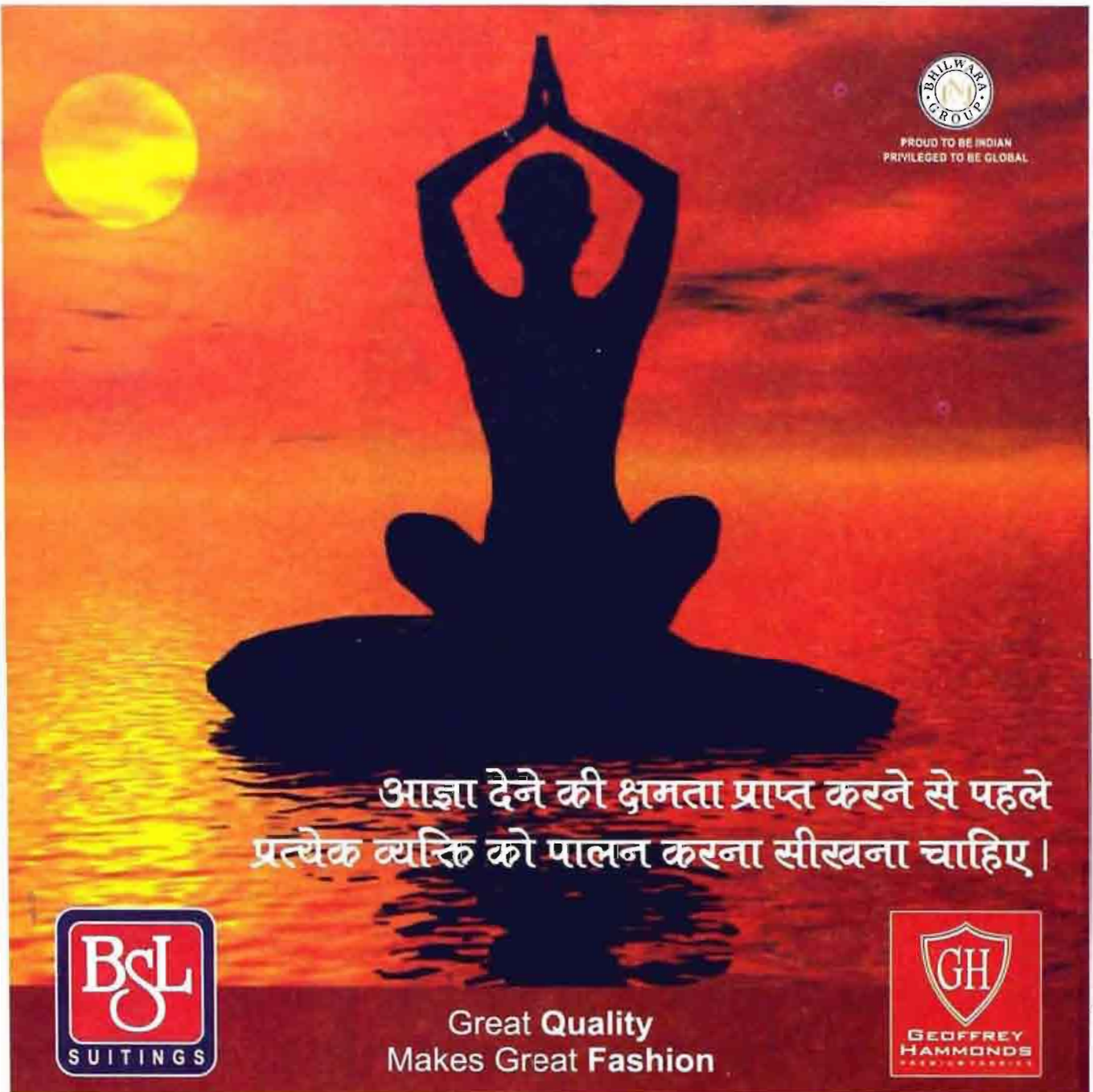
(रामकृष्ण मिशन को दिये गये दान आयकर धारा ८०जी के अन्तर्गत कर मुक्त हैं।)